इकाई 5 सूरदास का काव्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना संसार

5.3 सूरदास की भक्ति भावना

5.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

5.5 सूरदास की भक्ति में शृंगार

5.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

5.7 सूरदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

5.8 सूरदास के काव्य का वाचन और आस्वादन

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 उपयोगी पुस्तकें

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

सूरदास भक्तिकाल के शीर्ष कवियों में से एक हैं। वे सगुण भक्तिमार्ग के जितने बड़े भक्त हैं, उतने ही बड़े कवि भी। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- सूरदास के जीवन-वृत्त और रचना-संसार से अवगत हो सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति भावना के स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे;
- सूरदास की कविता में वात्सल्य के स्वरूप तथा वैशिष्ट्य का विश्लेषण कर सकेंगे;
- सूरदास की भक्ति में शृंगार का निरूपण तथा उसके संयोग और वियोग पक्ष का विवेचन कर सकेंगे;
- सूरदास की कविता में लोक जीवन के विविध पक्षों को जान पाएँगे;
- सूरदास के काव्य सौंदर्य और काव्य-भाषा का विवेचन कर सकेंगे; तथा
- पाठ्यक्रम में निर्धारित सूरदास के पदों की व्याख्या कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

सूरदास कृष्णभक्ति काव्यधारा के महान भक्त कवि हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा विलक्षण और कल्पना-शक्ति अद्‌भुत थी। कवि होने से पहले सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। यही कारण है कि गोसाईं विट्‌ठलनाथ ने इन्हें अष्टछाप के भक्तों में सबसे ऊँचा स्थान दिया था। सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। वे वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व विनय और दास्य भाव के पदों का गायन किया करते थे। पुष्टिमार्ग में आने के साथ उनका वर्ण्य-विषय श्रीकृष्णलीला हो गया। सूरदास मूलतः भक्त कवि हैं। कृष्णलीला के अंतर्गत वात्सल्य और शृंगार-वर्णन उनकी भक्ति-भावना के केंद्रीय विषय हैं। इन दोनों ही भावों के महासागर में सूर की पैठ बहुत गहरी है। इसीलिए आलोचकों को इन विषयों से संबंधित अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठी जान पड़ती हैं। सूरदास का सौंदर्य-बोध भी अद्वितीय है। प्रेमासक्त हृदय की सहज अनुभूतियों की स्वाभाविक व्यंजना में सूरदास सिद्धहस्त हैं। कृष्णलीला का वर्णन करते समय वे अपने परिवेश और समाज के प्रति सचेत रहे हैं। ब्रज की लोक-संस्कृति ने सूरदास के काव्य को जीवंतता,

स्वाभाविकता और समृद्धि प्रदान की है। इस इकाई में सूरदास के जीवन-वृत्त और उनके रचना-संसार से परिचय प्राप्त करते हुए उनकी भक्ति-पद्धति, उसके अंतर्गत वात्सल्य और श्रृंगार-वर्णन, उनकी कविता में अंकित लोक जीवन के विविध पक्षों के विश्लेषण के साथ उनके काव्य-वैशिष्ट्य पर विचार किया जाएगा।

5.2 सूरदास का जीवन वृत्त और रचना-संसार

सूरदास का जीवन-वृत्त

भक्त कवि सूरदास ने प्रत्यक्ष रूप से अपने जीवन के संबंध में कुछ नहीं कहा है, यही कारण है कि उनका कोई प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका है। सूर-साहित्य के आलोचकों ने विविध स्रोतों से उनके जीवन-परिचय की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे दो भागों में रखकर समझा जा सकता है– (i) बाह्य साक्ष्य और (ii) अंतः साक्ष्य। बाह्य साक्ष्यों के अंतर्गत सूर की समसामयिक कृतियों में प्राप्त उल्लेख तथा आधुनिक विद्वानों-आलोचकों के शोधपरक विचारों को रखा जा सकता है। समसामयिक कृतियों में सांप्रदायिक-धार्मिक साहित्य आता है, जिसमें वार्ता साहित्य और पुष्टिमार्गीय साहित्य प्रमुख है। इनके अतिरिक्त नाभादास कृत 'भक्तमाल' पर लिखित प्रियादास की टीका, कवि मियां सिंह कृत 'भक्त विनोद', ध्रुवदास की 'भक्त नामावली', नागरीदास कृत 'पदप्रसंग माला', गोस्वामी हरिराय कृत 'भाव प्रकाश', जमुनादास कृत 'भाव संग्रह' तथा अष्टसखामृत' आदि ग्रंथ हैं, जिनसे सूरदास के विषय में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त होती है। सूर-साहित्य के आधुनिक विद्वानों-आलोचकों के विचार इतिहास-ग्रंथों, सूर विषयक शोध ग्रंथों तथा निबंधों आदि में संकलित हैं। अंतःसाक्ष्य के अंतर्गत सूरदास की रचनाओं में प्राप्त कुछ ऐसे पद आते हैं, जो उनके जीवन-वृत्त के जटिल सूत्रों को सुलझाने में सहायक हैं।

'सूरसागर' और 'साहित्य-लहरी' के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता रहा है कि सूरदास का जन्म संवत् 1540 (1483 ई.) में हुआ था। पुष्टिमार्गीय ग्रंथों में आए उल्लेख के अनुसार सूरदास वल्लभाचार्य से 10 दिन छोटे थे, जिसको आधार मानकर यह निश्चित किया गया कि सूरदास का जन्म वैशाख शुक्ल 5, संवत् 1535 (1478 ई.) को हुआ था। डॉ. दीनदयालु गुप्त ने अपनी पुस्तक 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में इसे प्रमाणित भी किया है। सूरदास के जीवन के विषय में आज जो भी विवरण प्राप्त हैं, उनका मुख्य आधार 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' है। हरिराय कृत 'भाव प्रकाश' के अनुसार सूरदास का जन्म दिल्ली के पास सीही नामक गाँव में हुआ था। हिंदी के अधिकांश श्रेष्ठ आलोचकों – आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुदंर दास, रामकुमार वर्मा तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने इनका जन्म-स्थान आगरा के निकट 'रूनकता' को माना है, जबकि 'सूर-निर्णय' में द्वारकादास पारीख और प्रभुदयाल मित्तल ने सूरदास का जन्म स्थान दिल्ली के समीप सीही को माना है जिसका आधार उन्होंने 'भाव-प्रकाश' को बनाया है। इस प्रकार विभिन्न उल्लेखों व साक्ष्यों के मध्य सूरदास के जन्म-स्थान का निर्णय करना आसान नहीं है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूरदास के जीवन-परिचय का आरंभ गऊघाट से होता है, जहाँ उनकी भेंट वल्लभाचार्य से हुई थी।

जन्म-तिथि व जन्म-स्थान के समान ही सूरदास के नाम को लेकर भी विद्वानों के मध्य काफी विवाद है। 'सूरसागर' में सूरदास, सूर, सूरज, सूरजदास और सूरश्याम– उनके पाँच नामों का उल्लेख मिलता है। डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने सूरज और सूरजदास आदि नामों को किसी दूसरे व्यक्ति का नाम बताया है। उन्होंने उनका सूरदास नाम ही वास्तविक माना है। अधिकांश विद्वान इसी मत के समर्थक हैं। विद्वानों के मध्य मतभेद का एक अन्य विषय है– सूरदास

का अंधत्व। उन्हें जन्मांध मानने वालों में सूर-निर्णयकार तथा आचार्य नंददुलारे वाजपेयी आदि विद्वान हैं। सूर-निर्णयकार ने हरिराय के 'भावप्रकाश' को आधार बनाकर सूरदास को जन्मांध कहा है। कुछ विद्वान सूरदास को अंधा अवश्य मानते हैं, किंतु जन्मांध नहीं। ऐसे विद्वानों में मिश्रबंधु, श्यामसुंदर दास, चंद्रवली पांडेय तथा ब्रजेश्वर वर्मा का नाम उल्लेख्य हैं। वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होते समय सूरदास अंधे थे, इस तथ्य को लगभग सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' में लिखते हैं, ''. .. ऐसी आत्मग्लानि की अवस्था में अपनी हीनता को अतिरंजित करने की प्रवृत्ति मनुष्य में आ जाती है, ऐसे ही अवसरों पर सूरदास अपने को जन्म का अंधा और कर्म का अभागा कह देते थे। इसके अक्षरार्थ को बहुत अधिक महत्व नहीं देना चाहिए। परवर्ती पुस्तकों में केवल सुनी-सुनाई बातों का उल्लेख है। सूरदास का साहित्य कभी जन्मांध व्यक्ति का लिखा साहित्य नहीं हो सकता।''

हरिराय कृत 'भावप्रकाश' के अनुसार सूरदास अत्यंत दरिद्र ब्राह्मण थे। मात्र छः वर्ष की आयु में वे, माता-पिता को छोड़ सीही गाँव से दूर एक सरोवर के किनारे पीपल-वृक्ष की छाँव में कुटिया बनाकर रहने लगे थे। यहाँ रहते हुए उनका शकुन विद्या की ओर झुकाव हुआ और इसी विद्या के सहारे उनकी जीविका भी चलने लगी। यहीं उन्होंने गायन विद्या भी अर्जित की। मन अशांत रहने के कारण 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने इस स्थान को भी छोड़ दिया। इसके पश्चात सूरदास आगरा और मथुरा के बीच स्थित रूनकता गाँव के निकट गऊघाट नामक स्थान पर कुटी बनाकर सांसारिक विरक्ति के साथ रहने लगे। विनय और दास्य के अतिशय कारुण्य भाव वाले पदों की रचना उन्होंने इसी स्थान पर रहते हुए की। वार्ता-साहित्य के अनुसार संवत् 1576 के आसपास इसी स्थान पर सूरदास की भेंट वल्लभाचार्य

से हुई थी। आचार्य वल्लभ अपने स्थान अरैल (प्रयाग) से ब्रजयात्रा के लिए निकले थे। मार्ग में गऊघाट पड़ा। आचार्य यहीं ठहरे और उनकी भेंट एक अंधे भक्त गायक सूरदास से हुई। जब आचार्य ने सूर से कुछ गाने को कहा तो सूर ने अपने मधुर कंठ से दो पद गाकर सुनाए थे। पहला पद था – 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं' तथा दूसरा था– 'प्रभु हौं सब पतितन को नायक।' सूरदास का यह दैन्यभाव आचार्य वल्लभ को पसंद नहीं आया और उन्होंने वहीं पर सूर को विधिवत अपने संप्रदाय में दीक्षित किया। आचार्य ने उनका 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध से परिचय कराया तथा श्रीकृष्ण-लीला-गान हेतु उन्हें प्रेरित किया। इसके साथ ही सूरदास के जीवन में एक नया मोड़ आया और वे सदा के लिए कृष्णलीला-गान में समर्पित हो गए। वार्ता-साहित्य में सूरदास की सम्राट अकबर से भेंट का भी उल्लेख मिलता है। अपने दरबारी गायक तानसेन से सूरदास द्वारा रचित एक भजन सुनकर अकबर मुग्ध हो गया था। अजमेर शरीफ की यात्रा में मथुरा-मार्ग से जाते हुए अकबर ने सूरदास से भेंट की थी। सूरदास के संदर्भ में यह भी प्रसिद्ध है कि उनकी तुलसीदास से भी भेंट हुई थी जिसका उल्लेख 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'भक्तमाल की टीका' और 'मूलगोसाईंचरित' में मिलता है।

सूरदास के जन्मकाल की तरह ही उनके मृत्युकाल को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने संवत् 1620 (1563 ई.) के आसपास सूरदास की मृत्यु का अनुमान लगाया है। ब्रजेश्वर वर्मा का अनुमान संवत् 1640 (1683 ई.) के आसपास का है। अधिकांश साक्ष्य संवत् 1640 (1683 ई.) में ही सूरदास की मृत्यु को प्रमाणित करते हैं। वार्ता साहित्य के अनुसार सूरदास को अपने जीवन के अंतिम समय का पूर्वाभास हो गया था। वे शरीर-त्याग के लिए गोवर्धन छोड़कर परसौली चले गए थे। गोसाईं विट्ठलनाथ को जब यह ज्ञात

हुआ तो उन्हें भी सूर के अंतिम समय का आभास हो गया। उन्होंने भक्तों को एकत्रित कर कहा, 'पुष्टिमार्ग को जहाज जात है, सो जाको कुछ लेनो होय सो लेउ।' यह सुनते ही गोसाईं विट्ठलनाथ के साथ समस्त भक्त-गण परसौली पहुँच गए। उनका सामना जब सूरदास से हुआ उसी क्षण सूरदास ने 'खंजन नयन रूप रस माते' भजन गाते-गाते अपना शरीर त्याग दिया।

सूरदास का रचना-संसार

सूरदास के जीवन-वृत्त की भाँति उनकी रचनाओं को लेकर भी विद्वानों के बीच मतभेद रहा है। उनके प्रति अतिशय श्रद्धा-भाव, धार्मिक मान्यताओं तथा स्वयं कवि द्वारा लिखित हस्तलिपि के अभाव के कारण सूरदास की रचनाएँ वाद-विवाद का विषय बन गईं। नागरी प्रचारिणी सभा, वार्ता-साहित्य तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के आधार पर सूरदास की निम्नलिखित पचीस काव्य-कृतियों का उल्लेख किया जाता है :

(i) 'सूरसागर', (ii) 'सूर-सारावली', (iii) 'साहित्य-लहरी', (iv) 'भगवत् भाषा', (v) 'सूर-रामायण', (vi) 'गोवर्द्धन-लीला' (सरस लीला), (vii) 'दशम स्कंध भाषा', (viii) 'मानलीला', (ix) 'राधा रसकेलि कौतूहल', (x) 'सूरसागर-सार', (xi) 'दानलीला', (xii) 'भँवरलीला', (xiii) 'नागलीला', (xiv) 'व्याहली', (xv) 'प्राणप्यारी', (xvi) 'दृष्टिकूट के पद', (xvii) 'सूर शतक', (xviii) 'सूरसाठी', (xix) 'सूर पचीसी', (xx) 'सेवाफल', (xxi) 'सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद', (xxii) 'हरिवंश टीका', (xxiii) 'एकादशी महात्म्य', (xxiv) 'नल दमयंती' (xxv) 'रामजन्म'।

सूर-साहित्य के अधिकांश विद्वानों ने उपर्युक्त रचनाओं में से केवल 'सूर-सारावली', 'साहित्य-लहरी' और 'सूरसागर' को ही प्रामाणिकता की दृष्टि से विचारणीय माना है।

सूरसागर

यह सूरदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसकी प्रमाणिकता पर कोई विवाद नहीं हैं। इसका मूल विषय श्रीकृष्ण का लीला-गान है जो 'श्रीमद्भागवत पुराण' पर आधारित है। 'सूरसागर' के प्रकाशित और अप्रकाशित रूप में उपलब्ध कुल पदों की संख्या 6-7 हजार के लगभग है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' में पदों के कुल संख्या लगभग 4600 है। प्रो. मैनेजर पांडेय 'सूरसागर' के संग्रहात्मक रूप को ही उसका प्राचीनतम रूप मानते हैं। यह अपने मूल रूप में नित्य कीर्तन और वर्षोत्सव का संग्रह था, जिसका आगे चलकर नित्य कीर्तन, वर्षोत्सव, वसंत धमार, ग्रीष्म पद तथा रास के पद के रूप में विस्तार हुआ। 'सूरसागर' की प्राचीनतम उपलब्ध प्रतियाँ सं. 1644 (1581 ई.) से 1670 (1613 ई.) तक के बीच की अवधि की हैं, जो सूरदास के रचना-काल के आसपास की ही लगती हैं। संवत् 1753 (1696 ई.) के पहले 'सूरसागर' के द्वादश स्कंधात्मक रूपक का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सूर-सारावली

इस रचना की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। कुछ आलोचक इसे सर्वथा अप्रामाणिक और परवर्ती काल की रचना मानते हैं। कुछ ने इसे 'सूरसागर' की पद्बद्ध अनुक्रमणिका ठहराकर स्वतंत्र ग्रंथ ही नहीं माना है। सूर-निर्णयकार ने इसे 'सूरसागर' से स्वतंत्र रचना माना है, जिसकी रचना 1602 (1657 ई.) में हुई थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और आचार्य शुक्ल दोनों ने इसे सूरदास द्वारा 67 वर्ष की अवस्था में लिखे जाने की

ओर संकेत किया है। डॉ. मुंशीराम शर्मा तथा डॉ. हरवंश लाल शर्मा ने भी 'सूर-सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक रचना माना है। जबकि डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे सूरदास की रचना मानने से इंकार किया है। 'सूर-सारावली' की कोई हस्तलिखित पांडुलिपि प्राचीन रूप में उपलब्ध नहीं है और न ही इसका उल्लेख वार्ता-साहित्य में मिलता है।

'सूर-सारावली' के जिस 1002 वें पद के आधार पर विद्वानों ने इसके रचना-काल पर विचार किया है, वह पद निम्नलिखित है :

गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तव कियो बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन।।

साहित्य-लहरी

सूरदास की इस रचना को लेकर भी विद्वानों में मतभेद रहा है। 'साहित्य-लहरी' 118 पदों का अलंकार प्रधान दृष्टकूट शैली का चमत्कारपूर्ण ग्रंथ है। इसकी रचना के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए वार्ताकार ने स्पष्ट किया है कि सांसारिक वासनाओं में फँसे हुए नंददास को पुष्टि मार्ग पर आरूढ़ करने के लिए नायिका भेद तथा अलंकार के माध्यम से राधा-कृष्ण के चरणारविंद में प्रवृत्त करने के लिए सूर ने इस ग्रंथ की रचना की थी। इस रचना को पढ़कर सूर के पांडित्य का बोध तो हो जाता है, किंतु नंददास इससे कितना प्रेरित हुए होंगे, कहा नहीं जा सकता। 'साहित्य-लहरी' में वर्णित नायिका-भेद, अलंकार-निरूपण तथा दृष्टकूट के चमत्कार का सूर की भक्ति-भावना से कोई तालमेल नहीं बैठता। 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने वालों में प्रभुदयाल मित्तल, मुंशीराम शर्मा, हरवंशलाल शर्मा आदि आलोचकों के नाम उल्लेखनीय हैं। गोवर्धननाथ शुक्ल इसे

'सूरसागर' से ही संगृहीत मानने के पक्षधर हैं। 'साहित्य-लहरी' का वर्तमान स्वरूप भारतेंदु द्वारा 1892 ई. में पटना से प्रकाशित कराया गया था।

बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित ग्रंथों के रचयिता के नाम बताइए।

	ग्रंथ	रचयिता
(क)	भक्तमाल	.....
(ख)	साहित्य लहरी	.....
(ग)	भक्त विनोद	.....
(घ)	भक्त नामावली	.....
(ङ)	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	.....

2. निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

   (क) सूरदास कृष्णलीला वर्णन करते समय अपने ..... के प्रति भी सचेत रहे।

   (ख) सूरदास ..... से दस दिन छोटे थे।

   (ग) 18 वर्ष की उम्र में सूरदास आगरा और मथुरा के बीच रूनकला गाँव के निकट ..... नामक स्थान पर आ गए।

   (घ) सूरदास का ..... आचार्य वल्लभ को पसंद नहीं आया।

3. सूरदास और वल्लभाचार्य के बीच हुई प्रथम मुलाकात का विवरण दीजिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

4. सूरदास की प्रामाणिक रचनाओं का परिचय दस पंक्तियों में दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.3 सूरदास की भक्ति-भावना

'सूरसागर' का आरंभ विनय के पदों से होता है। प्रथम पद में सूरदास प्रभु के चरणों की वंदना करते हैं, 'चरण-कमल बंदौ हरि राई।' दूसरे पद में वे निर्गुण ब्रह्मोपासना की कठिनाइयों और सगुण ब्रह्मोपासना के औचित्य का उद्‌घाटन करते हैं। उनकी दृष्टि में निगुर्ण निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए अत्यंत दुष्कर है। वे अपना तर्क भी इस पद में प्रस्तुत करते हैं :

अविगति गति कछु कहत न आवै।

ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ, रस अंतरगत की भावै।।

...

रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु, निरालंव कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं, सूर सगुन पद गावै।।

अर्थात जो कभी जाना न जा सके, ऐसे अज्ञात निगुर्ण ब्रह्म के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। इसका अनुभव करने वाला उपासक उस गूँगे जैसा है जो मीठा फल खाकर भीतर ही भीतर उसका स्वाद लेता है। जो निर्गुण ब्रह्म रूप, आकार, गुण, जाति आदि की सीमा से परे है, ऐसे ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मन बिना किसी आधार के कहाँ-कहाँ दौड़े, उस ब्रह्म को सब प्रकार से अगम्य समझकर मैं (सूरदास) उसके सगुण-लीला का पद-गान कर रहा हूँ।

सूरदास की दृष्टि में परमब्रह्म श्रीकृष्ण के रूप में निर्गुण ब्रह्म ही सगुण-साकार हो गया है। क्योंकि निर्गुण और सगुण– दोनों ब्रह्म के ही दो रूप हैं। निर्गुण जहाँ ज्ञानाश्रित है, वहीं सगुण भक्ति का विषय है।

अंधभक्त सूरदास के विषय में सर्वविदित है कि उन्होंने जीवन के आरंभिक चरणों में निर्गुण साधना-पद्धति को अपनाकर अनेक पद लिखे थे। उनमें से एक पद यहाँ द्रष्टव्य है :

नैननि निरखि स्याम स्वरूप।
रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति रूप अनूप।।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास।
सूर चंद्र नक्षत्र पावक, सर्व तासु प्रकास।

मेरे नेत्र उस श्याम की छवि को निहारते हैं, जो घट-घट में व्याप्त हैं। जिसकी दिव्य सौंदर्य-आभा अनुपम है। जिसके चरण सातों पाताल हैं तथा शीश आकाश है। उसी ब्रह्म का प्रकाश सूर्य, चंद्र, नक्षत्र तथा अग्नि सभी में दिखाई पड़ता है।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले जब सूरदास गऊघाट पर रहते थे, तब वे केवल विनय और दास्य के पद गाया करते थे। वल्लभाचार्य को भी उन्होंने इसी प्रकार का पद सुनाया था, 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको।' इसे सुनकर आचार्य ने सूर को फटकार लगाई थी और कहा था, 'जो सूर है के ऐसो काहै को घिघियात है, कछु भगवतलीला वर्णन करि।' इस प्रकार वल्लभाचार्य के प्रभाव में आकर वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए तथा अष्टछाप-मंडल में सम्मिलित होकर श्रीकृष्ण के सगुण लीलागान की ओर उन्मुख हुए। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने शंकर के वेदांत-सूत्रों के कुछ अंशों पर 'अणु-भाष्य' लिखकर अपने मत का प्रतिपादन किया था। वल्लभ ने कई बिंदुओं पर शंकर से असहमति दर्ज कराई। वल्लभाचार्य का दर्शन शुद्धाद्वैतवाद के नाम से प्रचारित हुआ। आचार्य वल्लभ ब्रह्म को नित्य या साकार मानते थे तथा जगत को मिथ्या की जगह नित्य मानते थे। उनकी दृष्टि में चूँकि जगत ब्रह्म द्वारा निर्मित है, ब्रह्म कारण और जगत कार्य हैं, इसलिए जगत ब्रह्म से अभिन्न है। जीव जब समूची सृष्टि को कृष्णमय देखकर उनके प्रेम में परमानंद का अनुभव करता है तब वह अपनी शुद्धावस्था में पहुँच जाता है। भगवान उस जीव से प्रसन्न होकर उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। वस्तुतः शुद्ध पुष्टिमार्ग वह है, जिसमें भगवत्प्राप्ति विषयक सभी साधनों की अनुपस्थिति हो। पुष्टिमार्ग को साधनहीन भक्तों के लिए सरलतम मार्ग माना जाता है। पुष्टिमार्ग के अनुसार जीव, देह, क्रिया भेद और फल परंपरा के आधार पर तीन प्रकार के मार्ग हैं– पुष्टिमार्ग, मर्यादा मार्ग और प्रवाहमार्ग। इसमें पुष्टिमार्ग

भक्तिमार्ग है, मर्यादा मार्ग वैदिक मार्ग है, जिसका मुख्य लक्ष्य लोक-मर्यादा की रक्षा होता है। संसार के प्रवाह में पड़कर लौकिक या भौतिक सुखों की प्राप्ति हेतु प्रयत्नरत रहना प्रवाह मार्ग है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्त्व है– भवगतानुग्रह। यहाँ पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। प्रभु के अनुग्रह से ही लौकिक व दिव्य शक्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इसके लिए न तो किसी प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है और न ही किसी प्रकार के यत्न की। यहाँ बस प्रभु-चरणों में पूर्ण समर्पण ही अपेक्षित है। जब तक भगवान अपने भक्त पर कृपा कर उसे अपने स्वरूप का बोध नहीं कराते, तब तक भगवान का अनुभव संभव नहीं है। ईश्वर-प्राप्ति का यही कृपा मार्ग पुष्टिमार्ग है। सूर का विनय-भाव उनकी भक्ति का अभिन्न अंग है। सूरसागर का आरंभ भी विनय के पद से ही हुआ है :

चरण कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आंधर कौ सब कछु दरसाई।।
बहिरौ सुनै मूक पूनि बोलै, रंक चलै सिरि छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करूनामय बार-बार बंदौ तेहिं ताई।

अर्थात मैं प्रभु श्रीहरि के कमल के समान चरणों की वंदना करता हूँ। जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति पर्वत लाँघ जाता है, अंधे को सब कुछ दिखाई देने लगता है। गूँगा बोलने और बहरा सुनने लगता है। निर्धन व्यक्ति के सिर पर राजछत्र आ जाता है। सूरदास कहते हैं कि मैं ऐसे करुणा के सागर स्वामी के उन चरणों की बारंबार वंदना करता हूँ।

सामान्यतः सूर-काव्य को दो भागों – विनय के पद और हरिलीला के पद में विभक्त कर – सूरदास की भक्ति-पद्धति का विश्लेषण-विवेचन किया जाता है। मूलतः विनय और हरिलीला

एक दूसरे से अलग नहीं हैं। प्रभुलीला गान के लिए विनय अनिवार्य है तथा विनय भक्ति-साधना की पहली सीढ़ी भी है। सूरदास की भक्ति में एक विशेष प्रकार की विकसनशीलता देखी जाती है। वह दास्य से वात्सल्य और वात्सल्य से सख्यभाव का संस्पर्श करती हुई माधुर्य भाव तक की यात्रा पूर्ण करती है। विनय के पदों में दास्य भक्ति की व्यंजना हुई है इस भक्ति का मूल आधार है– दैन्यभाव। सूर का आत्मनिवेदन की शैली में लिखा एक पद द्रष्टव्य है :

अब कैं राखि लेहुँ भगवान।

हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया, पारधी साधै बान।।

हे भगवान, अब की बार मेरी रक्षा कीजिए। मैं वृक्ष की शाखा पर असहाय बैठा हूँ और शिकारी ने मुझ पर निशाना साध रखा है।

सूरदास की भक्ति का अगला सोपान उनकी वात्सल्य-भक्ति है। वात्सल्य का स्थाई भाव स्नेह होता है और इसमें मातृवृत्ति का मनोमय अनुभव होता है। यह प्रेम का कोमलतम रूप है जो लगभग प्रत्येक प्राणी में पाया जाता है। वात्सल्य का जितना विशद, गहन, व्यापक और मर्मस्पर्शी वर्णन सूरदास ने किया है, वैसा अन्यत्र नहीं हुआ है। सूर-काव्य में वात्सल्य का सर्वाधिक सशक्त आश्रय माँ यशोदा हैं। इनके अतिरिक्त माँ देवकी, बाबा नंद तथा वसुदेव के साथ-साथ समस्त ब्रज प्रदेश भी आश्रय बना हुआ है। कृष्ण-जन्म से लेकर उनके विभिन्न संस्कारों, पालने में झुलाना, घुटनों के सहारे चलना, बाल-क्रीड़ा, माखन चोरी जैसे अनेक प्रसंगों को सूरदास ने बड़े ही स्वाभाविक ढंग से वात्सल्य के पदों में अंकित किया है। बालक कृष्ण के रूप-सौंदर्य-वर्णन के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(i) कहाँ लौं बरनौं सुंदरताई।

खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि पाई।।

(ii) सोभित कर नवनीत लिए।

घुटुरूनि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।।

बालक कृष्ण अपने हाथ में माखन लिए हुए सुशोभित हो रहे हैं। वे घुटनों के बल चल रहे हैं, उनका शरीर धूल से लिपटा हुआ है और उनके अपने मुख पर दही लिपटा हुआ है।

सूरदास के काव्य में संयोग वात्सल्य की तरह ही वियोग वात्सल्य को भी पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण के मथुरा-प्रस्थान का प्रसंग यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें माँ यशोदा मथुरा जाते कृष्ण को किसी भी प्रकार रोक लेना चाहती हैं। वियोग के भय में विह्वल माँ की लाचारी इस पद में देखी जा सकती है :

जसोदा बार-बार यौं भाखै।

है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।

कृष्ण की वृंदावन-लीला में सूर की सख्य भक्ति के दर्शन होते हैं। सखा भाव से की गई भगवान की भक्ति सख्य भक्ति होती है। ब्रज के गोप-सखाओं के साथ क्रीड़ा करते कृष्ण की लीलाओं का सूरदास ने बड़ा ही सशक्त वर्णन किया है। कृष्ण अपने सभी सखाओं के साथ खेल रहे हैं :

खेलत स्याम ग्वालिन संग।

सुबल हलधर अरू श्रीदामा करत नाना रंग।।

मित्रों-सखाओं के संग खेलने में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता :

खेलत में को काको गुसैयाँ।

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही हरि करत रिसैयाँ।।

सूरदास की भक्ति में माधुर्य भाव की भक्ति का भी श्रेष्ठतम रूप देखने को मिलता है। इस प्रकार की भक्ति में प्रेम और शृंगार भाव का समावेश रहता है। वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ परब्रह्म श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण करके गोपियाँ अति आनंदित होती हैं। माधुर्य भक्ति का आदर्श रूप राधा-कृष्ण की प्रेम लीला में व्यक्त हुआ है। सूर-काव्य में राधा-कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। सूर ने प्रथम दृष्टि में ही दोनों के मध्य प्रेम उपजता दिखाया है :

बूझत स्याम कौन तू गोरी।

कहा रहति, काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी।

सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका गोरी।।

(कृष्ण पूछते हैं– हे गोरी तू कौन है, तू रहती कहाँ है? किसकी बेटी है, मैंने तुम्हें ब्रज की गलियों में कहीं देखा नहीं है। सूरदास कहते हैं कि मेरे प्रभु रसिक शिरोमणि हैं इसलिए उन्होंने भोली राधा को अपनी बातों में फुसला लिया है।)

राधा-कृष्ण के माध्यम से सूरदास ने प्रेम को जिस सर्वोच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहा है वही माधुर्य भक्ति की आदर्श स्थिति है। शृंगार के संयोग पक्ष के साथ वियोग पक्ष भी सूर-

काव्य में कम प्रभावशाली नहीं है। कृष्ण के वियोग में डूबी राधा का अवसाद सूरदास ने इस प्रकार से अंकित किया है :

अति मलीन वृषभानु कुमारी।

सूरदास कैसे करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी।।

अर्थात् बृषभानु की पुत्री राधा कृष्ण के वियोग में अत्यधिक उदास और दुखी है। सूरदास कहते हैं कि ब्रज की सभी गोपियाँ (युवतियाँ) कृष्ण के विरह में उनके बिना इसी प्रकार जी रही हैं।

'श्रीमद्भागवत' में निर्दिष्ट भक्ति के नौ रूपों का भी सूरदास के काव्य में पूर्ण समावेश हुआ है। सूरदास ने जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति को अपनाया था उसमें कर्मकांड तथा बाह्याचार के लिए अधिक स्थान नहीं था, किंतु 'भागवत' की नवधा भक्ति को उन्होंने निरस्त भी नहीं किया। नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वंदना आदि को स्वीकार कर उन्होंने अपने कई पदों में इनका उल्लेख भी किया। सूरदास ने अष्टयाम-सेवा-मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या-आरती तथा शयन के अनुसार इनसे संबंधित अनेक पदों की रचना की है।

समग्रतः सूर की भक्ति लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली है। उनकी भक्ति का धरातल अत्यंत उदात्त और व्यापक है। वह जाति-वर्ण की संकीर्णता का निषेध करती है। इस दृष्टि से सूरदास का एक पद यहाँ उल्लेखनीय है, जिसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट शब्दों में कहा है कि उनकी शरण में आने पर जाति-पाँति का कोई अर्थ नहीं रह जाता :

कह्यो शुक श्री भागवत विचार।

जाति पांति कोउ पूछत नाहीं, श्रीपति के दरबार।।

श्री शुकदेव ने 'भागवत' का विचार प्रकट किया। उनके अनुसार श्रीहरि के दरबार में जात-पाँत का कोई भेद नहीं है।

बोध प्रश्न

5. निम्नलिखित कथनों के आगे सही (✓) अथवा गलत (×) का निशान लगाइए।

   (क) सूरदास की दृष्टि में निराकार ब्रह्म की उपासना साधारण मनुष्य के लिए दुष्कर है। ( )

   (ख) सूरदास ने निर्गुण साधना-पद्धति से संबंधित कोई पद नहीं लिखा। ( )

   (ग) पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व भगवतानुग्रह है। ( )

   (घ) वैष्णव संप्रदाय में माधुर्य भाव की भक्ति को अन्य पद्धतियों से श्रेष्ठ माना गया है। ( )

   (ङ) सूरदास के काव्य में नवधा भक्ति की पूर्णतया उपेक्षा की गई है। ( )

6. सूरदास की भक्ति की विशिष्टताओं का उल्लेख दस पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.4 सूरदास की कविता में वात्सल्य

सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं। पुष्टिमार्ग में इष्टदेव श्रीकृष्ण के बालरूप की अधिक मान्यता रही है। कृष्णकाव्य की परंपरा में दक्षिण के आलवार भक्तों ने कृष्ण के बालरूप को साहित्य-जगत में पहले ही प्रतिष्ठित कर दिया था। सूरदास ने वल्लभाचार्य का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् कृष्णलीला-गान प्रारंभ किया। सबसे पहले उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओं से संबंधित पदों की रचना की। बाललीला के प्रति जितना आकर्षण सूरदास में दिखाई पड़ता है, उतना शायद विश्व के किसी कवि में नहीं होगा। वे बालरूप और बाल मनोविज्ञान के पारंगत कवि हैं। कृष्ण के जन्म तथा शैशव से लेकर किशोरवस्था तक के क्रमशः न जाने कितने मनोहारी चित्र सूर के काव्य में अंकित हैं।

सूरदास के काव्य में वात्सल्य के दोनों पक्षों का विशद चित्रण हुआ है। पहला पक्ष संयोग वात्सल्य का है, जिसमें कृष्ण-जन्म से ही बाललीला-वर्णन का आरंभ हो जाता है। कृष्ण के जन्म का प्रसंग आता है। उनका जन्म हो चुका है, नंद के द्वार पर चहल-पहल व आनंदातिरेक का वातावरण है। इस उत्सव में स्वयं को सम्मिलित होने से सूरदास रोक नहीं पाते और वहाँ पहुँचकर नंद से कहते हैं :

(नंद जू) मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ।

तुम्हरे पुत्र भयौ हौं सुनि के, अति आतुर उठि धायौ।

नंदराइ सुनि विनती मेरी, तबहिं विदा भल ह्वै हौं।

जब हँसि कै मोहन कछु बोलै, तिहि सुनि कै घर जाऊँ।

हौं तो तेरे घर की ढाढ़ी, सूरदास मोहिं नाऊँ।।

(हे नंद जी तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हुआ है यह सुनकर मैं अपने को रोक नहीं पाया। मेरा मन आनंद से भर गया। मैं गोवर्धन पर्वत से आ रहा हूँ। हे नंद जी मेरी आपसे विनती है कि जब मोहन एक बार हँस कर कुछ बोल देते हैं उसे सुनने के बाद ही मैं वापस जाऊँगा। मैं आपके घर पुत्र जन्म पर बधाई गाने वाले के रूप में ही आया हूँ, सूरदास मेरा नाम है।)

यहाँ एक ओर कृष्ण का जन्म होता है तो दूसरी ओर वात्सल्य सम्राट का भी नव जन्म होता है। बढ़ते हुए बालकृष्ण के साथ ही सूरदास की वात्सल्य दृष्टि भी क्रमशः तरूणाई प्राप्त करती जाती है। संयोग वात्सल्य के अनेक मनोहारी चित्र सूरकाव्य में अंकित है। इनमें से कुछ पद यहाँ उल्लेखनीय हैं :

(i) रूप-सौंदर्य :

कहाँ लौं बरनौ सुंदरताई।

खेलत कुंवर कनक आंगन में, नैन निरखि छवि छाई।।

(ii) बाल-क्रीड़ा :

किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।

मनिमय कनक नंद के आंगन, बिंब पकरिबे धावत।।

(iii) मातृ-अभिलाषा :

जसुमति मन अभिलाषा करै।

कब मेरो लाल घुटुरूवनि रेंगै, कब धरती पग द्वैक धरै।।

कब द्वै दंत दूध के देखौं, कब तुतरे मुख-बैन झरै।।

(माँ यशोदा के मन में अभिलाषा होती है कि कब मेरा पुत्र घुटनों के बल चलेगा और वह कब धरती पर अपने दोनों पैर रखेगा। कब मैं उसके दूध के दो दांत देखूँगी और कब उसके मुख से तोतली वाणी निकलेगी।)

(iv) बालहठ :

मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों।

जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।।

(v) बाललीला :

मैया मैं नहिं माखन खायो।

ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।।

(vi) बालक्षोग :

खेलत में को काको गुसैयां।

हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां।।

(vii) मातृ-आशंका :

लालन वारी या मुख ऊपर।

माई मोरहि दीठि न लागै, ताते मसि-बिंदा दियो भ्रू पर।।

(माँ यशोदा कहती हैं– हे लाल ! मैं तेरे ऊपर स्वयं को न्योछावर करती हूँ। मेरी ही नजर मेरे लाल को न लग जाए, इस आशंका से मैंने इसकी भौंहों पर काजल का टीका लगा दिया है।)

सूरदास के वात्सल्य संबंधी पद उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-क्षमता का सशक्त प्रमाण हैं। वह चाहे बालक कृष्ण का रूप-सौंदर्य हो या उनका बालहठ, उनकी बाल सुलभ लीलाएँ हो या माँ यशोदा के भीतर पल रही अभिलाषाएँ– सभी प्रसंगों के वर्णन में सूरदास ने अपने मनोविज्ञान-बोध और कलात्मक प्रौढ़ता का परिचय दिया है।

सूरदास के काव्य में संयोग-वात्सल्य की तरह ही वियोग-वात्सल्य में भी नंद और यशोदा मुख्य-आश्रय हैं। जब कृष्ण मथुरा-गमन के लिए तैयार होते हैं तो माँ यशोदा की मातृसुलभ व्याकुलता बढ़ जाती है। उनकी आँखें आसपास किसी ऐसे हितैषी की तलाश करने लगती हैं, जो जाते हुए कृष्ण को किसी तरह रोक ले :

(i) जसोदा बार-बार यौं भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गुपालहिं राखै।।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ।
सुफलक सुत मेरे प्रान हरन कौ, काल रूप ह्वै आयौ।।

(यशोदा बार-बार यह कहती हैं कि ब्रज में ऐसा कोई मेरा अपना है जो गोपाल को यहाँ से जाने से रोक ले। मेरे छोटे बालक से क्या काम पड़ा कि राजा ने उसे मधुपुरी बुलाया है। अक्रूर मेरा प्राण हरने के लिए काल बनकर आया है।)

(ii) कमलनयन गुन टेरत-टेरत, अधर वदन कुम्हिलानी।

'सूर' कहा लगि प्रकट जनाऊँ, दुखित नंद जु की रानी।।

(कमल के समान आँखों वाले कृष्ण के गुण गाते-गाते माँ यशोदा के होठ और मुख जीर्ण पड़ गए हैं। सूर कहते हैं कि उनकी पीड़ा का वर्णन कहाँ तक करूँ?)

सूरदास को मातृहृदय के अंतस्तल का गहरा बोध है। वे पुत्र-वियोग के भय से आक्रांत माँ की पीड़ा को समझते हैं, इसलिए यशोदा के दुख को भली भाँति यहाँ उन्होंने व्यक्त किया है, कृष्ण-गमन का समाचार सुनकर यशोदा को गहरा आघात लगा :

यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता।

कहा अक्रूर ठगौरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता।

(कृष्ण के गमन का समाचार सुनते ही माँ यशोदा धरा पर गिर गईं। अक्रूर कौन-सी ठग विद्या लेकर आए जो अपने साथ दोनों भाइयों को लिए जा रहे हैं।)

कृष्ण के प्रवास-काल में उद्धव के ब्रज-आगमन पर गोपी-उद्धव-संवाद में भी माँ यशोदा की विरह दशा का वर्णन हुआ है। ये वे पुत्र की कुशलता के लिए चिंतित-आशंकित रहती हैं। गोपियों की तरह ही वे भी उद्धव के द्वारा देवकी को एक माँ का संदेश भेजती हैं कि वे तो देवकी के पुत्र कृष्ण का पालन-पोषण करने वाली एक धाय मात्र हैं, फिर भी उस पुत्र की चिंता यशोदा को दिन-रात लगी रहती है :

संदेसो देवकी सो कहियो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।।

जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।

प्रात होते मेरे लाड़ लड़ैतै, माखन रोटी खावै।।

इस पद में सूरदास ने मातृहृदय का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। वे निश्चित रूप से वात्सल्य रस के सम्राट कवि हैं। वे बालकृष्ण के रूप-सौंदर्य और उनकी लीलाओं पर ही मुग्ध नहीं हैं, अपितु माँ यशोदा के वत्सल भाव पर भी उतने ही मुग्ध हैं। अपने वात्सल्य-वर्णन में सूर ने जिन उपमाओं और रूपकों का सहारा लिया वे उनके हाथों में आकर साहित्याकाश में अमर हो गए। आज भी सूरदास वात्सल्य-वर्णन के साहित्यिक मानदंड बने हुए हैं।

5.5 सूरदास की भक्ति में शृंगार

काव्यशास्त्र में जो शृंगार रस है वही भक्ति के क्षेत्र में मधुर रस है। प्रेमभाव का ही दूसरा रूप माधुर्य भाव है। सूरदास पुष्टिमार्गीय भक्त कवि हैं जिनके काव्य में प्रेमभक्ति या माधुर्य भक्ति की महत्ता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य-विषय राधा-कृष्ण का प्रेम तथा गोपी-कृष्णप्रेम के प्रसंग हैं जो पूर्णतया शृंगार भावना से अनुप्राणित हैं। काव्यशास्त्र में शृंगार को रसराज कहा जाता है और ऐसा माना जाता है कि इसमें सभी रस समाहित हो जाते हैं। सूरदास का काव्य अपनी समग्रता में माधुर्य भाव पर आधारित काव्य है।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला के कई आयाम हैं। इसमें एक ओर जहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम है तो दूसरी ओर गोपियों और कृष्ण का। इन दोनों ही प्रेम-प्रसंगों के बीच की जो सबसे बड़ी धुरी है, वह है कृष्ण का दिव्य-अलौकिक सौंदर्य। कृष्ण का यही अलौकिक सौंदर्य संपूर्ण प्रेमलीला की नित्य शक्ति है। सूरदास के यहाँ प्रेम की उत्पत्ति और विकास में रूप-

आकर्षण और साहचर्य– दोनों की बड़ी भूमिका है। यहाँ बाल्यावस्था का आकर्षण किशोरवस्था और यौवनावस्था तक आते-आते प्रौढ़ और परिपुष्ट हो जाता है। राधा और कृष्ण का प्रथम संपर्क एक दूसरे के रूपाकर्षण और सम्मोहन में बाँध देता है। यहीं से दोनों के बीच प्रेम की उत्पत्ति सूरदास ने दिखाई है :

खेलत हरि निकसे ब्रज-खोरी।

कटि कछनी पीतांबर बाँधे, हाथ लिए भौंरा चक डोरी।।

मोर मुकुट, कुंडल श्रवननि वर, दसन दमक दामिनि छवि छोरी।

गए स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिए रोरी।।

...

सूर स्याम देखत ही रीझैं, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी।।

(श्रीकृष्ण खेलते हुए ब्रज की गलियों में निकल गए। उन्होंने कमर में कछनी अर्थात छोटी धोती और पीला वस्त्र बाँधा हुआ था तथा हाथ में लट्टू और डोरी लिए हुए थे। उनके सिर पर मोरपंख का मुकुट और कानों में सुंदर कुंडल थे। उनके दाँतों ने मानो बिजली की दमक छीन ली हो। खेलते-खेलते कृष्ण यमुना के किनारे पहुँच गए। उनके शरीर पर चंदन का लेप सुशोभित हो रहा था। उन्होंने वहाँ अचानक ही राधा को देखा जिनके नेत्र विशाल थे और जिन्होंने मस्तक पर रोली का टीका लगाया हुआ था। ... सूरदास कहते हैं कि राधा को देखते ही श्याम-सुंदर कृष्ण उन पर मुग्ध हो गए और दोनों के नेत्र परस्पर मिलते ही उन पर सम्मोहन व्याप्त हो गया।)

राधा और कृष्ण के बीच उपजा यह आकर्षण प्रेम का प्रथम सोपान है। दोनों में मिलन की उत्कंठा तीव्र हो उठती है। सूरदास दोनों के हृदय में एक साथ झाँकते हैं और उनकी अनुभूतियों को यहाँ शब्द देते दिखाई पड़ते हैं :

प्रथम सनेह दुहुँनि मन जान्यौ।

नैन-नैन की-हीं सब बातें, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ।।

क्रमशः राधा-कृष्ण का प्रेम प्रगाढ़ होने लगता है। राधा भी किसी न किसी बहाने कृष्ण से मिलने का अवसर ढूँढ़ती रहती हैं। बाल्यकाल में खेलने का बहाना सबसे अधिक उपयुक्त और अचूक होता है :

खेलन कैं मिस कुंवर राधिका, नंद महरि कै आई।

सकुच सहित मधुरै करि बोली, घर हो कुँवर कन्हाई।।

सूर-काव्य में कृष्णलीला का एक अहम हिस्सा वेणु-प्रसंग का है। मुरली की मोहक धुन राधा और गोपियों के साथ-साथ समूचे ब्रजमंडल को अपने अधीन कर लेती है। एक ओर कृष्ण का मोहक रूप है तो दूसरी ओर उनके द्वारा बजाई गई मुरली की मधुर तान जिसके जाल में फँसकर गोपियाँ व्याकुल और अधीर हो उठती हैं। जो मुरली कृष्ण को अपने वश में रखती है, गोपियों का उसके प्रति ईर्ष्या-भाव भी स्वाभाविक है :

(i) मुरली मोहे कुंवर कन्हाई।
अँचवति अधर सुधा बस कीन्हे, अब हम कहा करै री माई।।
....
अब सुनि सूर कौन बिधि कीजै, बन की ब्याधि माँझ घर आई।।

अर्थात मुरली ने कृष्ण को मोह लिया है। वह कृष्ण के अधर-सुधा का पान करती है और इस प्रकार उसने कृष्ण को अपने वश में कर लिया है। हे सखी अब मैं कौन सा यत्न करूँ? ... सूरदास कहते हैं कि गोपियों को कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। वन की यह व्याधि (बीमारी) आज घर में आ चुकी है।

(ii) मुरली तऊ गुपालहिं भावति।

सुन री सखी जदपि नंदलालहिं, नाना भाँति नचावति।।

सूरदास के काव्य में कृष्ण और गोपियों के बीच का प्रेम केवल ह्रदय के बंद कपाटों के भीतर तक सीमित नहीं रहता, वह वहाँ से निकलकर गोकुल की गलियों, पनघट, जमुना-तट सहित संपूर्ण ब्रज-प्रदेश में व्याप्त हो जाता है। पनघट-प्रसंग के कुछ दृश्य प्रस्तुत हैं :

(i) पनघट रोके रहत कन्हाई।

जमुना जल कोउ भरन न पावै, देखत ही फिर जाई।।

(ii) री हौं स्याम मोहिनी घाली।

अबहिं गई जल भरन अकेली, हरि चितवन उर साली।।

अर्थात हे सखी ! मैं तो श्याम के मोहिनी रूप का शिकार हो गई हूँ। अभी मैं अकेली जल भरने गई थी। वहाँ उनकी चितवन (दृष्टि) ने मेरे ह्रदय को घायल कर दिया।

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में पड़कर लोकलाज और मर्यादा को त्याग देती हैं। उनको प्रेम-मार्ग में कोई बंधन स्वीकार्य नहीं है। गोपियों का मानना है कि जिस ब्रह्म ने इस शरीर की सृष्टि की है, उससे इस शरीर की दूरी क्यों? उससे लज्जा क्यों? पुष्टि मार्ग में शरीर को भी ब्रह्म

की तरह नित्य माना गया है। इसीलिए यहाँ गोपियाँ सांसारिक लोकलाज को त्यागकर कृष्णमय हो जाना चाहती हैं :

लोक सकुच कुल-कानि तजी।

जैसे नदी सिंधु को धावै वैसेहि स्याम भजी।।

मात-पिता बहु त्रास दिखायौ, नैकु न डरी लजी।

मानति नहीं लोक-मरजादा, हरि के रंग मजी।

सूर स्याम को मिलि चूनौ, हरदी ज्यौं रंग रजी।।

अर्थात हमने लोक-लाज और कुल-मर्यादा सबका त्याग कर दिया है। जिस प्रकार नदी दौड़ती हुई जाकर सागर से मिलती है। उसी प्रकार हम कृष्ण में मिलकर कृष्णमय हो गई हैं। हमारे माता-पिता ने हमें अनेक प्रकार से डराया-धमकाया किंतु हम तनिक भी नहीं डरीं और न ही लज्जित हुईं। हम अब लोक-मर्यादा को नहीं मानती हैं क्योंकि हम पूरी तरह कृष्ण के रंग में रंग चुकी हैं। सूरदास कहते हैं कि ये कृष्ण के प्रेम में ऐसे कृष्णमय हो गई हैं जैसे हल्दी और चूना परस्पर मिलकर एक रंग हो जाते हैं।

सूरदास ने जितनी सजगता और कलात्मकता से संयोग-श्रृंगार का वर्णन किया है, वियोग-वर्णन में भी वही सजगता और कलात्मकता दिखाई पड़ती है। उन्होंने मानव-मन की अतल गहराइयों में झाँककर उनमें स्थित भावों तथा विभिन्न अंतर्दशाओं की सूक्ष्म-कलात्मक अभिव्यक्ति की है। सूरदास के काव्य में वियोग-वर्णन के मुख्यतः तीन स्थल हैं। पहला, नंद-यशोदा का वात्सल्यजनित वियोग; दूसरा, राधा तथा गोपियों का दांपत्य अथवा मधुर भक्तिजन्य विरह और तीसरा कृष्ण का माता-पिता, मित्रों, सखाओं, गोपियों तथा समस्त ब्रज प्रदेश के

प्रति वियोग। ये सभी प्रसंग मिलकर सूरदास के विप्रलंभ शृंगार का एक संपूर्ण ताना-बाना तैयार करते हैं। कृष्ण के प्रवास के पश्चात समूचे ब्रज के लिए वियोग की पीड़ा असह्य हो गई। गोपियों को संयोग के समय शीतलता देने वाला चंद्रमा अब वेदना में वृद्धि करने लगा है। सारी रात तारे गिन-गिन कर बीतने लगी है। एक गोपी अपनी यह वेदना प्रस्तुत करती हुई कहती है :

माई मोको चंद लग्यौ दुःख दैन।

कहँ वे स्याम कहाँ वै बतियाँ, कहँ वै सुख की रैन।।

तारे गनत गनत ही हारी, टपकन लागे नैन।

सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, विरहिनि को नहिं चैन।।

वियोग-शृंगार की दृष्टि से सूरदास का 'भ्रमरगीत' विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य में से एक है। यहाँ विरहविदग्ध हृदय की जितनी वैविध्यपूर्ण अंतर्दशाएँ देखने को मिलती हैं, अन्यत्र शायद ही मिलें। ब्रज पहुँचकर उद्धव जब गोपियों को कृष्ण का संदेश सुना रहे थे कि वहाँ एक भौंरा आ पहुँचा। यहीं से 'भ्रमरगीत' की शुरूआत हुई है। पूरा का पूरा 'भ्रमरगीत' वक्रोक्तियों से पटा पड़ा है। यहाँ गोपियाँ उद्धव के निर्गुण-ज्ञान का उपदेश सुनकर अपनी वाक् चातुरी से उद्धव को जगह-जगह निरूत्तर कर देती हैं। गोपियों द्वारा सगुण कृष्ण के प्रति प्रेम और समर्पण देखकर उद्धव फेर में पड़ जाते हैं। गोपियों के वाग्वैदग्ध्य को देखकर ही आचार्य शुक्ल ने लिखा, ''सूरदासजी में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्रायः उतनी चतुरता और वाग्विदग्धता भी है। ... गोपियों के वचन में कितनी विदग्धता और वक्रता भरी है।''

गोपियाँ उद्धव के कहने से कृष्ण के प्रेम को कैसे भुला सकती हैं। कृष्ण की छवि को हृदय से निकालना सरल कहाँ है :

इहिं उर माखनचोर गड़े।

अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

केवल गोपियाँ ही नहीं, समूचा ब्रज कृष्ण के वियोग में तड़प रहा है। गोपियाँ उद्धव से विनती करती हैं कि वे शीघ्र कृष्ण को ब्रज ले आएँ। ऐसा करके उन्हें संतो के बीच यश की प्राप्ति होगी :

ऊधो स्यामहिं तुम लै आओ।

ब्रज-जन चातक प्यास मरत हैं, स्वाति बूँद बरसाओ।।

ऐसा नहीं है कि ब्रज का यह वियोग एकतरफा है। कृष्ण को भी ब्रज की स्मृतियाँ उतनी ही विह्वल करती हैं। उद्धव के ब्रज से मथुरा लौटने के पश्चात कृष्ण भी अपनी मनोदशा को उद्धव से साझा करते हैं :

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।।

(हे उद्धव मुझसे ब्रज भुलाए नहीं भूलता। यमुना का वह सुंदर किनारा और सुंदर वृक्षों की छाया अब भी मेरी स्मृतियों में बसी हुई है।)

समग्रतः सूरदास का शृंगार-वर्णन काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक– दोनों ही दृष्टियों से सशक्त है। इसमें जितनी गहनता है उतनी ही व्यापकता भी विद्यमान है। सूरदास के काव्य में प्रेम-शृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

बोध प्रश्न

7. सूरदास के वात्सल्य वर्णन की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

8. सूर के काव्य में अभिव्यक्त गोपियों के वियोग का वर्णन कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....
.....
.....
.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.6 सूरदास की कविता में लोक जीवन

हिंदी साहित्य कोश के अनुसार, ''लोक मनुष्य-समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य-संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अंहकार से शून्य है, और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।'' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लोक को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''लोक का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों ग्रामों में फैली वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोक .. . अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।''

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रज प्रदेश को श्रीकृष्ण की लीलाभूमि मानकर इसकी सीमा चौरासी कोस मानी है। मथुरा, वृंदावन और उसके समीपस्थ स्थानों को मिलाकर बने भू-प्रदेश को ब्रजप्रदेश या ब्रजमंडल कहा गया है। 'सूरसागर' में ब्रज का लोक जीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। सूरदास के काव्य में मध्यकालीन ब्रज-संस्कृति के दो पक्ष मुख्य रूप से उभरकर आते हैं। एक नगर-संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व मथुरा जैसे नगर करते हैं और दूसरी ग्रामीण संस्कृति है, जिसका प्रतिनिधित्व ब्रज का ग्रामीण अंचल करता है जो किसानों-चरवाहों का अंचल है, जहाँ पशुपालन या गोचारण कृषि-कर्म का ही एक अनिवार्य हिस्सा है। सूर के काव्य में ब्रज का यह ग्रामीण अंचल अपनी विविधता और सजीवता के

साथ उपस्थित है। 'सूरसागर' के आरंभिक विनय के पदों से ही किसान-जीवन की अनेक वास्तविकताएँ दिखाई पड़ती हैं, जिनका अपना एक निश्चित ऐतिहासिक-सामाजिक संदर्भ है। किसान का मुख्य कर्म खेती होती है। सूरदास अपने परिवेश की संस्कृति के प्रति अत्यंत सजग साहित्यकार हैं। वे कृषि-कार्य की एक-एक प्रक्रिया से अवगत हैं, जिसका बोध उन्होंने जगह-जगह कराया है :

प्रभु जू यौं कीन्हीं हम खेती।

बंजर भूमि गाउं हर जोते, अरू जेती की तेती।।

काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौं।

अति कुबुद्धि मन हाँकन हारे, माया जूआ दीन्हौं।।

इंद्रिय-मूल-किसान, महातृन-अग्रज-बीज बई।

जन्म जन्म की विषय-वासना उपजत लता नई।।

(हे प्रभु! सांसारिक जीवन में रहते हुए मैंने इस प्रकार की खेती की है। ये सांसारिक जीवन बंजर भूमि है, जिसे हर गाँव वाले ने जोता है। फिर भी यह है कि बंजर की बंजर ही रह गई। काम और क्रोध नामक दो शक्तिशाली बैलों ने मिलकर राजसी और तामसी दोनों प्रकार के कर्मों की खेती की। अत्यधिक कुबुद्धि से युक्त हमारा मन इन बैलों को हाँकने वाला था, जिसने इनके कंधों पर माया रूपी जुआ रख दिया। मूल इंद्रियाँ किसान बनीं जिन्होंने महातृण (फसल) के लिए अपने अनुसार बीज बो दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि जन्म-जन्मांतर की विषय-वासनाओं की नई लताएँ लहलहाने लगीं।)

किसान को खेती के कार्य में जिन-जिन वस्तुओं, लोगों तथा व्यवस्थाओं का सामना करना पड़ता है, उन सबका एक-एक करके उल्लेख सूरदास ने इस पद में किया है :

पंच-प्रजा अति प्रबल बली मिलि, मन-विधान जौ कीनौ।

अधिकारी जम लेखा माँगै, तातैं हौं आधीनौ।।

घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ जौन दियैं मैं छूटौं।

धर्म जमानत मिल्यौ न चाहे, तातैं ठाकुर लूटौं।।

(अत्यंत प्रबल पंच इंद्रिय रूपी प्रजा ने शक्तिशाली मन से मिलकर कर्म विधान की रचना की। अब यम रूपी अधिकारी कर्मों का लेखा-जोखा माँगता है, जिसके समक्ष मैं अधीन और बेबस हूँ। मेरे घर में तुम्हारे भजन-स्मरण की पूँजी भी नहीं है जिसे देकर मैं छूट सकूँ। धर्म की जमानत देने वाला भी कोई नहीं मिलता, फलस्वरूप ठाकुर रूपी यमराज मुझे लूट रहा है।)

यहाँ अधिकारी, पटवारी, जमींदार सभी का उल्लेख उन्होंने किया है जो तत्कालीन कृषक-वर्ग का शोषण कर रहे थे। सूरदास का समाज निश्चित रूप से खेतिहर समाज रहा होगा। फलतः किसानों के जीवन की छोटी से छोटी चीज को उन्होंने जाने-अनजाने आत्मसात कर लिया था। सूरदास जब भी भावमग्न होकर कविता करते थे तो ये छोटी-छोटी चीजें स्वतः ही कविता में अपना स्थान बना लेती थीं।

सूरदास के कृषि-ज्ञान को पुष्ट करने वाला एक और पद यहाँ प्रस्तुत है, जो गोपी-उद्धव-संवाद से संबंधित है। निर्गुण और योग-साधना का उपदेश सुनकर गोपियों की प्रतिक्रिया इस पद में देखी जा सकती है :

आए जोग सिखावन पांड़े।

परमारथी पुराननि लादे, ज्यों बनजारे टांड़े।।...

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान, कुम्हाड़े।।

सूरदास के कृष्णलीला-गान में गोप-ग्वालों के साथ गाएँ भी सहज रूप में उपस्थित हैं। गोचारण सूरकाव्य का एक अत्यंत महत्वपूर्ण संदर्भ है। यहाँ परमब्रह्म श्रीकृष्ण चरवाहे की भूमिका में वर्णित हैं। ग्वालों-चरवाहों के जीवन में गाय का क्या महत्व होता है, सूरदास इससे भलीभाँति परिचित हैं। गायों के स्वभाव तथा उनके विविध प्रकारों से सूरकाव्य भरा पड़ा है :

आजु चरावन गाइ चलौ जू, कान्ह कुमुद घन जैऐ।

सीतन कुंज कदम की छहियां, छाक छहूँ रस खैऐ।

अपनी अपनी गाइ ग्वाल सब आनि करौ इक ठौरी।

धौरी, धूमरि, राती, रौंछी, बोलि बुलाइ चिन्हौरी।।

सूरकाव्य में ब्रज की संस्कृति का आकर्षण असीम है। मथुरा का राजसी जीवन भी कृष्ण को फीका लगता है क्योंकि ब्रज का लोक जीवन उनके अंतर्मन से निकलता ही नहीं है। यमुना तट पर सखाओं के साथ खेलने तथा छककर माखन खाने आदि की स्मृतियाँ उनकी आँखों में आँसू भर देती हैं। वे सत्यभामा से कहते हैं :

सुनि सतभामा सौंह तिहारी।

जब-जब मोहिं घोष सुधि आवत, नैननि बहत पनारी।।

वे जमुना वे सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी।

वृंदावन की गुल्मलता हैं, मन मधुकर की प्यारी।।

ब्रज की मोहक प्रकृति और संस्कृति सूरदास के हृदय में गहरे बैठी हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में लोक जीवन की बड़ी ही धारदार अभिव्यक्ति मिलती है। सूर की कविता में पशुपालन, गोचारण, यमुना-तट-विहार, माखनलीला आदि प्रसंग किसान-चरवाहा संस्कृति का एक संपूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं।

मध्यकालीन सामंती व्यवस्था का शिकार सूर का समाज भी रहा है। सूदखोरों द्वारा असहाय ग्रामीणों पर किए जा रहे अन्याय-अत्याचार का उल्लेख सूरदास ने इस पद में इस प्रकार किया है :

इक कौ आनि ठेलत पाँच!

करुनामय कित जाऊँ कृपानिधि, बहुत नचायो नाच।।

सबै कूर मोसो ऋण चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।

बिना दियै दुख देत दयानिधि, कहो कौन बिधि कीजै।।

...

मन राखै तुम्हरे चरननि पै, नित नित जो दुख पावै।

मुकरि जाम कै दीन बचन सुनि, जमपुर बाँधि पठावै।

अर्थात (हमसे) बलपूर्वक एक के बदले पाँच वसूला जाता है। हे करुणा और कृपा के सागर! सबने मुझे बहुत त्रस्त किया हुआ है। मैं अब कहाँ जाऊँ? सभी क्रूरतापूर्वक मुझसे ऋण वसूलना चाहते हैं। आप ही बताइए मैं कहाँ से ऋण चुकाऊँ। हे दयानिधि प्रभु! बिना चुकाए अनेक प्रकार की यातनाएँ मिलती है। आप ही बताइए मैं क्या उपाय करूँ। नित्य दुखों से संतप्त मन को मैंने आपके चरणों में समर्पित कर रखा है। जब कोई दीन असहाय ऋण नहीं चुका पाता तो उसे बाँधकर मौत के मुहँ में डाल दिया जाता है।

ऋण लेने वाला यदि मुकर जाता था तो उसकी क्या दशा की जाती थी इसका उल्लेख करना सूरदास नहीं भूले हैं। उनकी कविता में तत्कालीन समाज की एक-एक सच्चाई को सहज अभिव्यक्ति मिली है।

सूरदास के काव्य में वर्णित कृष्णलीला की अधिकांश पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है। इसलिए वहाँ की लोक मान्यताएँ भी उनके काव्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त कर सकी हैं। काग का बोलकर उड़ जाना, भुजा पकड़ना, काग का संदेश वाहक होना आदि मान्यताएँ सूर के लोक-अनुभव से उनके काव्य में आई हैं। सूरदास की कविता में मानव जीवन के अनेक पारंपरिक संस्कारों को भी अभिव्यक्ति मिली है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर हर्षित-आनंदित ब्रज समाज का उत्सव देखने योग्य है। जन्म के उपरांत नार-छेदन का प्रसंग आया है, जिसमें दाई यशोदा से पुत्र-जन्म का नेग माँगती है। वह सोने का हार लिए बिना नार नहीं काटेगी :

जसूदा नार न छेदन दैहौं।

मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, यहै आजु हौं लैहौं।।

इसके उपरांत शिशु के नामकरण, अन्नप्रासन आदि का वर्णन भी सूरकाव्य में लोक-परंपराओं के पूर्णतः अनुरूप आया है :

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।

मनि कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन।।

ये संस्कार कृष्ण के संदर्भ में भले ही राजसी लग रह हों, ब्रज के साधारण समाज में भी इनका यथा सामर्थ्य आयोजन होता था। सूरदास ने इन संस्कारों की सूचना मात्र न देकर इनका विस्तार से वर्णन किया है।

ब्रज के लोक जीवन में मनाए जाने वाले तीज-त्योहारों और उत्सवों की झाँकी भी सूर के काव्य की एक अप्रतिम विशेषता है। 'सूरसागर' में वर्णित फाग के कुछ दृश्य यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) वृंदावन खेलत हरि होरी।

बाजत ताल मृदंगा, झाँझ डफ, नंदलला वृषभानु किसोरी।।

(ii) हरि संग खेलत हैं सब फाग।

इहि मिस, करत प्रगट गोपी, उर अंतर को अनुराग।।

इस प्रकार सूर के काव्य में फाग आदि त्योहारों के वर्णन की बहुलता है। यहाँ उनके पद लोकगीतों से मिलकर एकाकार हो गए हैं। ये पद पारंपरिक लोकगीतों का अनुसरण जान पड़ते हैं।

सूरदास के काव्य में मध्यवर्गीय परिवार और उसका गृहस्थ जीवन केंद्र में है। वे सही अर्थों में गृहस्थ मानस के कवि हैं। कृष्णलीला का पूरा विधान ब्रज के लोक जीवन की निधि है। सूर के काव्य में ब्रज का ग्रामीण अंचल कभी आँखों से ओझल नहीं हुआ है। लोक जीवन से ली गई शब्दावली, वार्तालाप-शैली, लोकोक्ति-मुहावरे, बिंब, प्रतीक आदि से सूर का काव्य लोक काव्य बन पड़ा है। समग्रतः सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है। ब्रज के धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और भाषा का लोकव्यापी रूप सूर के काव्य में मिलता है।

5.7 सूरदास की भाषा और काव्य सौंदर्य

भाव-सौंदर्य :

सूरदास में जितनी सहृदयता या भावुकता थी उतनी ही वाग्विदग्धता भी थी। चूँकि सहृदयता का संबंध कवि के भाव पक्ष से होता है और वाग्वैदग्ध्य का संबंध उसके अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। इसलिए भक्त कवि सूरदास की कविता में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का सौंदर्य उत्कृष्ट है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन्हें कलात्मक रूप से व्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। उनके भाव पक्ष के अंतर्गत मुख्यतः वात्सल्य, शृंगार और भक्ति का वर्णन आता है। वस्तुतः उनकी भक्ति की विस्तृत परिधि में ही वात्सल्य और शृंगार वर्णन आते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में सूरदास सिद्धहस्त थे।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की लीलाओं के वर्णन-क्रम में सर्वप्रथम उनके जन्म तथा उसके पश्चात उनके रूप का वर्णन किया है। कृष्ण जन्म की बधाई से लेकर उनके पालने में झूलने तक के अनेक प्रसंगों को सूर ने अपने काव्य में बड़ी सजगता और जीवंतता से अंकित किया है। माँ यशोदा द्वारा शिशु कृष्ण को पालने में झुलाने का यह दृश्य अनुपम सौंदर्य से युक्त है :

यशोदा हरि पालने झुलावै।

हलरावै दुलरावै, मल्हावै, जोई-सोई कछु गावै।।

मेरे लाल कौ आउ निंदरिया, काहें न आनि सुवावै।

तू काहैं नहिं बेगहिं आवै तोको कान्ह बुलावै।।

इस पद में सूरदास का वात्सल्य-सौंदर्य अद्‌भुत है। माँ यहाँ अपने छोटे से शिशु को पालने में सुलाने का यत्न कर रही है। वह लोरी की मधुर धुन सुनाकर निंदिया को बुलाती है। उसके शीघ्र न आने पर उससे सवाल भी करती है। सूरदास इस अनूठे दृश्य को अपनी कल्पना में सँजोते हैं और उसे शब्द देते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि जो सुख बड़े-बड़े ऋषियों-देवों को भी उपलब्ध नहीं है वह यहाँ माँ यशोदा को सहज में प्राप्त हो गया है। सूरदास के वात्सल्य वर्णन के पीछे जो सबसे बड़ी उनकी ताकत काम कर रही थी, वह थी उनके द्वारा मातृहृदय के भीतर की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की मनोवैज्ञानिक पहचान। माँ यशोदा की छोटी-बड़ी प्रत्येक अभिलाषा की खबर उन्हें है :

जसुमति मन अभिलाष करैं।

कब मेरो लाल घुटुरूवनि रेंगैं, कब धरनी पद द्वैक धरैं।।

माँ की इन्हीं अभिलाषाओं के बीच धीरे-धीरे कृष्ण बड़े होते हैं, घुटनों के सहारे चलते हैं, आँगन में पड़ रही अपनी ही परछाईं को पकड़ना चाहते हैं। अभिलाषा बढ़ते हुए बालकों में भी प्रबल होती है। सूरदास बाल मनोविज्ञान में पारंगत हैं। उनके कृष्ण माँ यशोदा से प्रश्न करने लगते हैं, 'मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।' सूरदास बालहठ से भी पूरी तरह परिचित हैं। वे जानते हैं कि बालकों के हठ के समक्ष सभी तर्क और युक्तियाँ व्यर्थ होती हैं। बालक अपनी

बात मनवाने के लिए बड़ों को धमकाना भी जानते हैं, 'मैया मैं तो चंद खिलौना लैहों। जैहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहों।' जब अपनी चोरी पकड़ी जाती है तो आरोप दूसरों पर मढ़ देना बाल-स्वभाव ही होता है, 'मैया मैं नहिं माखन खायो। ख्याल परै ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायो।' सखाओं के चिढ़ाने पर माँ से शिकायत करना बालकों का नित्य स्वभाव होता है। सूरदास इसे चित्रित करना कैसे भूल सकते थे, 'मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।'

कृष्ण के मथुरा-गमन-प्रसंग में वात्सल्य के वियोग पक्ष की भी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण-वियोग में व्याकुल माँ यशोदा की व्यथा सूरकाव्य में जगह-जगह फूट पड़ी है। यशोदा कृष्ण की स्मृतियों में विह्वल होती हैं– 'है कोऊ ऐसी भाँति दिखावै। किंकिन सब्द चलति धुनि, रूनझुन ठुमुकि गृह आवै।' पुत्र चिंता जब असह्य हो जाती है तो वे उद्धव से देवकी को संदेश भी भेजती हैं, 'संदेसौं देवकी सो कहियो। वे केवल पुत्र कृष्ण का सान्निध्य चाहती हैं, इसके लिए वे वसुदेव की दासी तक बनने को तैयार हैं।

वृंदावन की उन्मुक्त प्रकृति के मध्य सखाओं और गायों के साथ विचरण करते कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सूरदास का प्रिय विषय रहा है। गोचारण-प्रसंग के अनेक मनोहारी दृश्यों का अंकन सूर ने अपने काव्य में किया है। दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैः

(i) मैया री मोहिं दाऊ टेरत।

मोको बनफल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।

(ii) मैया हौं न चरैहो गाय।

सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पांय पिराय।।

सूरदास का शृंगार-वर्णन उनके भावपक्ष का अभिन्न अंग है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सूरकाव्य के शृंगार के अंतर्गत आया हुआ प्रेम अचानक उपजा हुआ प्रेम नहीं है। इस मनोवृत्ति का क्रमशः विकास हुआ है। राधा और कृष्ण का प्रेम किशोर वय का प्रेम है। दोनों के बीच का यह आकर्षण दीर्घ साहचर्य का भी परिणाम है। राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन का दृश्य प्रस्तुत करने में सूरदास ने अपनी उत्कृष्ट कलात्मकता का परिचय दिया है :

खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।

औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिए रोरी।।

सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।।

ब्रज की गलियों में चुहलबाजी, छेड़छाड, गोदोहन में राधा-कृष्ण की पारस्परिक नोक-झोक आदि क्रिया व्यापार यहाँ इतने स्वाभाविक और जीवंत हैं कि पाठक इन पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

सूरदास ने जितनी दक्षता और प्रौढ़ता का परिचय संयोग-शृंगार के वर्णन में दिया है उतना ही वियोग-शृंगार के वर्णन में। विस्तार और गंभीरता वियोग वर्णन में भी उसी प्रकार की है। सूरकाव्य में वियोग वर्णन का आरंभ वात्सल्य-वियोग से हुआ है। कृष्ण-वियोग का दुख माँ यशोदा को इतना है कि वे नंद से लड़ने-झगड़ने लगती हैं। सूर ने परिस्थितिजन्य इस क्षोभ की बड़ी ही मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति की है। यशोदा कहती हैं, 'फाटि न गयी ब्रज की छाती कत यह सूल सह्यो।'

इस प्रकार वात्सल्य वियोग से आरंभ होकर सूर का वियोग वर्णन गोपियों के वियोग पर केंद्रित होता है। सूर ने यहाँ परंपरागत विरह दशाओं का चित्र तो प्रस्तुत किया ही है, अपनी नवीन दृष्टि का भी परिचय दिया है। ब्रज का कोना-कोना कृष्ण के विरह में दग्ध दिखाई पड़ता है। संयोग काल में सुख और शीतलता प्रदान करने वाली प्रकृति वियोग में आग उगलने वाली प्रतीत होती है। अपनी विरह-व्यथा को कृष्ण तक पहुँचाने की कामना से एक गोपी उद्धव से कहती है, 'बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।' विरह कातर गोपियाँ हरे भरे मधुबन को भी कोस डालती हैं, 'मधुबन तुम कत रहत हरे।' कृष्ण का वियोग केवल गोपियों को ही व्यथित नहीं करता, ब्रज की प्रकृति भी इस दुख में बराबर की साझीदार बन पड़ी है। गोपियाँ यमुना की विरह-दशा को उद्धव से कहती हैं, 'देखियत कालिंदी अति कारी। कहियो पथिक जाय उन हरि सों, भई विरह जुर जारी।।'

इस प्रकार सूरदास के काव्य का संवेदना पक्ष अत्यंत व्यापक तथा समृद्ध है। संवेदना के सभी उपादान बहुत की कुशलता से नियोजित किए गए हैं।

सूरदास की काव्यभाषा (शिल्प-सौंदर्य)

सूरदास के काव्य में ब्रज-प्रदेश की लोक प्रचलित भाषा अपने विविध गुणों के साथ उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। मध्यकालीन सामंती समाज-व्यवस्था में भाषा-व्यवहार की दृष्टि से समाज दो वर्गों में विभक्त था। समाज का अभिजात वर्ग संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में रचित साहित्य का रसास्वादन करता था, जबकि सामान्य जनता की समझ से ये भाषाएँ बहुत दूर थीं। भक्ति-आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि भाषा के स्तर पर भी थी। लोकभाषा को साहित्य-सृजन की भाषा बनाने में इस आंदोलन ने बड़ी भूमिका निभाई। सूरदास इसी आंदोलन की

उपज हैं, जिन्होंने लोक व्यवहृत ब्रजभाषा में साहित्य-सृजन की एक नई परंपरा की शुरूआत की। ब्रजभाषा-साहित्य की यह परंपरा आगामी चार सौ साल तक अबाध गति से चलती रही। सूरदास की काव्यभाषा लोक-व्यवहार की भाषा है। इसलिए उसमें सामाजिक जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने की अपूर्व क्षमता है।

सूरदास के काव्य में प्रयुक्त ब्रजभाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी कोमलता है। भाषा और भावों का ऐसा कोमल संबंध सूरदास के शब्द-चयन और सटीक प्रयोग के कारण हो सका है। 'सूरसागर' के पदों में यह भाषागत कोमलता सर्वत्र देखी जा सकती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

मोहन हौं तुम ऊपर वारी।

कंठ लगाई लिए, मुख चूमति, सुंदर स्याम बिहारी।।

सूर की काव्यभाषा की एक अन्य विशेषता है– गुणानुकूल शब्द-योजना की। उन्होंने अपनी भाषा में भावों के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद– तीनों गुणों का निर्वाह किया है। अपने कोमल शब्द-चयन के द्वारा भी ओज की अभिव्यक्ति सूर जैसे समर्थ कवि द्वारा ही संभव थी :

जा जा रे भौंरा दूर दूर।

रंग रूप औ एकहि मूरति मेरो मन किया चूर चूर।।

सूरदास ने भ्रमरगीत-प्रसंग में जहाँ दार्शनिक विचार व्यक्त किए हैं अथवा कृष्ण के सौंदर्य पर पद-रचना की है वहाँ संस्कृत की तत्सम शब्दावली का सफल प्रयोग उन्होंने किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

नैननि नंद नंदन ध्यान।

पानि पल्लव रेख गनि गुन अवधि विविध विधान।।

चंद कोटि प्रकास मुख अवतंस कोटिक भान।

कोटि मन्मथ वारि छवि पर निरखि दीजत ध्यान।।

सूरदास ने अपने काव्य में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अरबी-फरसी को भी अत्यंत कुशलता से अपनाया है। तरवारि, हद, गुमान, दगा, दीवान, मेहमान, दस्तक, फौज जैसे सैकड़ों शब्द सूरकाव्य में स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। लोकोक्तियों-मुहावरों के प्रयोग ने सूरदास की भाषा को एक विशिष्ट धार दी है। भ्रमरगीत-प्रसंग में तो इन मुहावरों की बाढ़-सी है। कहावतों-मुहावरों पर सूर ने अपनी भाषा की लाक्षणिक कोमलता का अद्‌भुत कलेवर चढ़ा दिया है।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(i) कहु षट्‌पद कैसे खैयतु है, हाथिन के संग गांडे।

काकी भूख गई बयारि भखि, बिना दूध घृत माँड़ें।।

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान कुम्हाड़े।।

(ii) वरू वै कुब्जा भलो कियो।

सुनि सुनि समाचार ऊधो मो, कछुक सिरात हियो।।

(iii) तुम सों प्रेम कथा का कहिबो, मनहु काटिबो घास।।

सूरदास की काव्य भाषा की एक बड़ी विशेषता उनकी वाग्विदग्धता है। 'भ्रमरगीत' में गोपियों की उक्तियाँ आद्योपांत वाक्चार्तुय और वाग्वैदग्ध्य से भरी हुई है। उनमें से एक गोपी व्यंग्य में उद्धव से जो कहती है उसमें कृष्ण के अंग-प्रत्यंग के लिए बहुत ही सटीक उपमाएँ दी गई हैं :

ऊधो अब हम समुझि भई।

नंदनंदन के अंग अंग प्रति, उपमा न्याय दई।।

कुंतल कुटिल भंवर भामिनि वर मालति मुरै लई

लजत न गहरू कियौ तिन कपटी जानी निरस भई।।

यहाँ कृष्ण के घुंघराले केश कपटी भ्रमर की भाँति हैं। भौंरा पहले तो मालती पर आकृष्ट होकर उसे फुसला लेता है तत्पश्चात् उसका रस चूसकर उसे त्याग देता है। सूरदास की वाग्विदग्धता के कुछ और उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

(i) निरगुन कौन देस को वासी।

मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, वूझत साँच न हाँसी।।

(ii) इहिं उर माखन चोर गड़े।

अब कैसेहुँ निकस नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।।

इस प्रकार 'भ्रमरगीत' में गोपियों का एक-एक कथन सूर की वाक्-चातुरी और भाषा वैदिगध्य का प्रामाणिक उदाहरण है। यहाँ गोपियाँ कभी निर्गुण योग साधना के व्यावहारिक पक्ष की जटिलताओं पर प्रहार करती हैं, वो कभी सहज-सरल सगुण प्रेम की वकालत करती दिखाई पड़ती हैं।

सूरदास का काव्य अलंकारों का महासागर है। इसमें भी सबसे बड़ी बात यह है कि अलंकार यहाँ लाए नहीं गए हैं, अपितु सूर की भावाभिव्यक्ति में सहायक होने पर स्वतः ही आ गए हैं। भाव-विभोर होकर सूरदास जो कुछ भी कहते हैं, अलंकारों की वहाँ झड़ी सी लग जाती है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा सूरदास के प्रिय अलंकार हैं। रूपकातिशयोक्ति अलंकार का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें उपमानों के द्वारा राधा के नख-शिख-सौंदर्य का सुंदर वर्णन है :

अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल-कमल पर गजवर क्रीड़त, ता पर सिंह करत अनुराग।
रूचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता अमृत फल लाग।।

वस्तुतः सूर की काव्यभाषा रूपक प्रधान भाषा है। यहाँ रूपक मात्र अलंकार नहीं है बल्कि लाक्षणिकता का सारा सौंदर्य उन्हीं पर निर्भर है। उनकी प्रतीक-योजना का उत्कृष्ट रूप 'भ्रमरगीत' में दिखाई पड़ता है। चित्रात्मकता तथा बिंब-विधान सूर की काव्यभाषा के अंगभूत तत्व हैं। उनका 'सूरसागर' रूप-रस-गंध-स्पर्श के बिंबों का विपुल कोश है।

बोध प्रश्न

9. सूर के काव्य में ब्रज का लोक जीवन किन रूपों में आया है? सोदाहरण उल्लेख कीजिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10. सूरदास की काव्यभाषा की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए। (उत्तर दस पंक्तियों में दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5.8 सूर के काव्य का वाचन और आस्वादन

काव्य का वाचन

देखिए– परिशिष्ट।

काव्य का आस्वादन

- **जापर दीनानाथ ढरै। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के 'विनय के पद' से उद्धृत है। सूरदास कृष्ण के सगुण रूप के अनन्य उपासक हैं। उनके उपास्य श्रीकृष्ण दीन-दुखियों की सहायता करने वाले हैं। जिस पर उनकी कृपा-दृष्टि पड़ती है वही सुंदर और श्रेष्ठ हो जाता है। ऐसे ही दयालु और भक्त वत्सल प्रभु की उदारता का वर्णन कवि ने प्रस्तुत पद में किया है।

व्याख्या

जिस पर भी दीन-दुखियों के स्वामी श्रीकृष्ण कृपा कर देते हैं वही उच्च कुलवाला, महान और सुंदर हो जाता है। विभीषण कौन था? वह बेचारा राक्षस ही तो था तब भी श्रीहरि ने हँसते-हँसते उसके शीश पर लंका का राजछत्र रख दिया। रावण से अधिक बलशाली राजा कौन था? वह भी अपने अहंकार में ही पड़कर नष्ट हो गया। ब्राह्मण सुदामा से अधिक विपन्न कौन था? उन पर भी प्रभु ने कृपा करके अपने ही समान संपन्न बना दिया। अजामिल से बड़ा पापी भला कौन होगा। उस पर भी प्रभु की कृपा हुई जिसके पश्चात यमराज भी

समीप जाने से भयभीत हो गया था। देवर्षि नारद से बड़ा वैरागी कौन होगा तो भी उन्हें रात-दिन भटकना पड़ा था। भगवान शंकर से बड़ा योगी कौन है? उन्हें भी कामदेव ने छल लिया था। दासी कुब्जा से अधिक कुरूप कौन स्त्री होगी, वह भी श्रीहरि को पतिरूप में प्राप्त कर भवसागर से पार हो गई। सीता से अधिक सुंदर स्त्री कौन होगी? फिर भी उन्हें जीवन भर पति-वियोग का दुख सहना पड़ा। प्रभु की इस रहस्यमय लीला को कोई नहीं जानता कि किस भाव से वे प्रसन्न होकर भक्तों पर अपनी कृपा कर दें। भक्त सूरदास कहते हैं कि प्रभु के भजन के बिना जीव बार-बार गर्भस्थ होता है उसे जठर (उदर) की आग में जलना पड़ता है।

विशेष

(i) प्रस्तुत पद में विभिन्न पौराणिक कथाओं और उनके पात्रों के संदर्भ भाव-सौंदर्य में वृद्धि करते हैं।

(ii) प्रभु के अनुग्रह या कृपादृष्टि पर केंद्रित भक्ति ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो भक्त कवि सूरदास का अभीष्ट है।

(iii) सुंदर सोइ, हरि हँसि, आदि में अनुप्रास अलंकार की सुंदर योजना है।

- **किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है जो 'सूरसागर' के बाललीला से लिया गया है। बालक कृष्ण अपने आँगन में घुटनों के बल चलते हुए अनेक बालसुलभ क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। माता

यशोदा उनकी विभिन्न मोहक छवियों को देखकर मुग्ध हो जाती हैं। वे नंद को भी यह दृश्य दिखाना चाहती हैं। इसी मनोहर सौंदर्य का वर्णन सूरदास ने प्रस्तुत पद में किया है।

व्याख्या

किलकारी मारते हुए बालक कृष्ण घुटनों के बल चलकर आ रहे हैं। नंद के भवन का आँगन मणियों और सोने से जड़ा हुआ है, जिसमें बालक कृष्ण अपनी ही परछाई को पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। कभी कृष्ण अपनी छाया को देखकर उसे अपने हाथों से पकड़ना चाहते हैं। इस क्रिया में जब वे किलकारी मारकर हँसते हैं तो उनके दूध के दोनों दाँतों की शोभा दिखाई पड़ती है। वे बार-बार इसी क्रिया को दोहराते हैं। आँगन की स्वर्णभूमि पर चलते हुए कृष्ण के हाथ-पैरों की परछाईं को देखकर यही एक उपमा उचित प्रतीत होती है कि पृथ्वी मानों प्रत्येक पग और प्रत्येक मणि में कमल प्रकट करके उनके लिए आसन सजा रही हो। बालकृष्ण की इस सुखद छवि को देख माँ यशोदा बार-बार नंद को बुलाती हैं। सूरदास कहते हैं कि अतिशय ममत्व तथा भावी अनिष्ट के भय से माँ यशोदा बालक कृष्ण को आँचल से ढककर दूध पिलाने लगती हैं।

विशेष

(i) यह पद सूरदास के वात्सल्य-वर्णन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ii) प्रस्तुत पद में घुटनों के बल चलने वाले बालकृष्ण की बाल मनोवृत्ति तथा यशोदा के मातृहृदय का स्वाभाविक व मनोवैज्ञानिक अंकन हुआ है।

(iii) प्रस्तुत पद सूरदास की सूक्ष्म दृष्टि का बेजोड़ उदाहरण है जो उनके जन्मांध होने पर संदेह उत्पन्न करता है।

(iv) 'अँचरा तर...' पंक्ति में ब्रज की पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति की झलक द्रष्टव्य है।

(v) 'किलकत कान्ह' में अनुप्रास अलंकार है और 'कनक भूमि...' में उत्प्रेक्षा तथा उपमा।

- **मैया बहुत बुरो बलदाऊ। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित है जो 'सूरसागर' के दशम स्कंध में वर्णित बाललीला से लिया गया है। बालसुलभ प्रकृति के अनुरूप खेल-खेल में बलराम चिढ़ाने और डराने का प्रयास करते हैं, जिसकी शिकायत कृष्ण माँ यशोदा से करते हैं। कृष्ण की यह बाललीला सूरदास का अत्यंत प्रिय वर्ण्य-विषय है। प्रस्तुत पद में उन्होंने इसका बहुत सुंदर वर्णन किया है।

व्याख्या

कृष्ण कहते हैं– हे माता ! बलराम जी बहुत बुरे हैं। कहने लगे कि वन में एक बहुत बड़ा तमाशा हो रहा है। सभी बालक देखने के लिए एक साथ चलो। वे मुझे भी बहला पुचकार कर वहाँ ले गए जहाँ झाड़ियों का घना वन था। फिर वहाँ से यह कहकर भाग गए कि यहाँ तो हाऊ (हौवा) है जो काट खाएगा। यह सुनते ही मैं डर गया, काँपने और रोने लगा। वहाँ कोई मुझे धीरज बँधाने वाला नहीं था। अत्यधिक भय से मैं भाग भी नहीं पा रहा था, जबकि वे सभी आगे-आगे भाग रहे थे। बलराम जी मुझसे यह भी कहते हैं कि तुम्हें तो मोल लेकर

(खरीद कर) यहाँ लाया गया है और वे स्वयं को श्रेष्ठ कहलवाते हैं। सूरदास कहते हैं कि बालकृष्ण की बातें सुनकर माता यशोदा कहने लगीं कि बलराम तो बड़ा झूठा है और उसे वैसे ही सखा मिल गए हैं।

विशेष

(i) खेल-खेल में बालक एक दूसरे को चिढ़ाते और डराते हुए एक विशेष प्रकार का सुख प्राप्त करते हैं। सूरदास को बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ है। उन्होंने इस मोहक प्रसंग का अत्यंत सुंदर अंकन प्रस्तुत पद में किया है।

(ii) हाऊ शब्द का प्रयोग आज भी लोक में 'हौवा' के रूप में प्रचलित है जिसका संबंध उस अस्तित्वहीन वस्तु से है जिससे भय लगता है।

(iii) ब्रजभाषा की लोकप्रचलित शब्दावली का सुंदर प्रयोग हुआ है।

- **इहिं उर माखन चोर गड़े । ....**

संदर्भ

प्रस्तुत पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के भ्रमरगीत से लिया गया है। ब्रज की गोपियाँ अनन्य भाव से कृष्ण से (सगुण रूप से) प्रेम करती हैं। उद्धव गोपियों को अपने अंतर्मन में निगुर्ण ब्रह्म की स्थापना करने का उपदेश देते हैं। गोपियाँ अपनी विवशता व्यक्त करने के लिए तर्क का आश्रय लेती हैं। एक गोपी उद्धव से कहती है कि उसके हृदय में तो कृष्ण का सगुण साकार रूप बसा है, इसमें निर्गुण कैसे समा सकता है।

व्याख्या

इस हृदय में तो माखनचोर कृष्ण भीतर तक गड़े हुए हैं। हे उद्धव! वे अपनी त्रिभंगी के रूप में तिरछे होकर जिस प्रकार अड़े हुए हैं, अब किसी भी प्रकार से निकल नहीं पाते। यद्यपि कृष्ण अहीर हैं और यशोदा के पुत्र हैं, फिर भी वे मुझसे छोड़े नहीं जाते। मथुरा जाकर वे भले ही श्रेष्ठ कुल वाले यदुवंशी बन गए हों, हमें तो वे तनिक भी बड़े प्रतीत नहीं होते। वसुदेव और देवकी कौन हैं, इनको न तो हम जानती हैं और न ही इनके विषय में कुछ समझना चाहती हैं। नंदनंदन श्रीकृष्ण को देखने के बाद हमें कोई और नहीं सूझता।

विशेष

(i) प्रस्तुत पद में गोपियों की भावुकता के साथ वाक्पटुता का सुंदर वर्णन हुआ है।

(ii) ज्ञान और योग पर भक्ति और प्रेम की प्रतिष्ठा सूरदास का मुख्य उद्देश्य है, जो गोपियों के माध्यम से यहाँ सशक्त रूप में स्पष्ट देखी जा सकती है।

(iii) प्रेम में ऊँच-नीच और छोटे-बड़े की विषमता समाप्त हो जाती है इसीलिए गोपियों को मथुरा वाले कृष्ण बड़े प्रतीत नहीं होते।

- **काहे कौं रोकत मारग सूघो। ...**

संदर्भ

प्रस्तुत पद भक्त कवि सूरदास द्वारा रचित है, जो 'सूरसागर' के भ्रमरगीत से लिया गया है। उद्धव जब गोपियों से बार-बार कृष्ण के सगुण रूप को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म को अपनाने की

सीख देते हैं तो यह सुनकर गोपियाँ खीझ उठती हैं। उन्हें कृष्ण के साथ किए गए प्रेम का मार्ग सीधा और सरल प्रतीत होता है। उद्धव के साथ-साथ अन्य मथुरावासियों पर भी उनकी खीझ और झुंझलाहट प्रकट होती है।

व्याख्या

तुम हमें प्रेम के सीधे मार्ग पर चलने से क्यों रोकते हो? हे उद्धव सुनो! तुम निर्गुण प्रेम के काँटों से कृष्ण-प्रेम के राजपथ को क्यों अवरूद्ध कर रहे हो। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि या तो तुम कुब्जा द्वारा सिखा-पढ़ाकर भेजे गए हो या हसमे छुटकारा पाने के लिए कृष्ण ने स्वयं तुम्हें यहाँ भेजा है। वेद, पुराण और स्मृतियों में सर्वत्र ढूँढ़ कर देख लो। क्या कहीं स्त्रियों के लिए यौग का विधान किया गया है? उस व्यक्ति की बात का क्या विश्वास किया जाए, जो छाछ और दूध में अंतर करना ही न जानता हो। सच्चाई तो यह है कि श्रीकृष्ण के रूप में मूलधन तो अक्रूर पहले ही ले जा चुके हैं, और अब ब्याज वसूलने के लिए (उनकी छवि भी हृदय से निकालकर ने जाने के लिए) यहाँ उद्धव आए हैं।

विशेष

(i) सूरदास की गोपियों में प्रेमजन्य ईर्ष्या, मान, तार्किकता और वाक् कौशल– इन सबकी सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत पद में हुई है।

(ii) कवि द्वारा निर्गुण मार्ग की अपेक्षा सगुण मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध करने का सुंदर और तार्किक ढंग से प्रयास किया गया है। 'दूध और छाछ' तथा 'कंटक और राजपंथ' आदि शब्दों के माध्यम से यह अंतर स्पष्ट हो जाता है।

- **चलत देखि जसुमति सुख पावै। ...**

व्याख्या

बालक कृष्ण अब इतने बड़े हो गए हैं कि वे खुद से चलने लगे हैं। कृष्ण को चलते देख यशोदा को सुख की अनुभूति होती है। वे (कृष्ण) धरती पर ठुमक-ठुमक कर अपना पैर रखते हैं तथा माँ को देखकर उसे अपना चलना दिखाते हैं। वे घर की दहलीज तक चले जाते हैं और फिर लौटकर वहीं वापस आ जाते हैं जहाँ से चले थे। बालक कृष्ण ने चलना तो शुरू कर दिया है पर दहलीज लाँघ नहीं पाते। दहलीज को लाँघने के प्रयास में बार-बार गिर पड़ते हैं। बालक कृष्ण अपनी इस लीला से देवताओं और मुनिओं को आश्चर्य में (सोच करावै) डालते हैं। जो प्रभु पल भर में करोड़ों बह्मांड का निर्माण कर सकते हैं; उसका नाश करने में भी उन्हें तनिक देर नहीं लगती उसे नंद की रानी तरह-तरह का खेल खिला रही हैं। बालक कृष्ण दहलीज लाँघने के प्रयास में बार-बार गिरता देख माँ यशोदा उनका हाथ पकड़कर क्रमशः दहलीज पर चढ़ाकर फिर उतारती हैं। सूरदास कहते हैं कि प्रभु की इस लीला को देखकर देवता, मनुष्य अपनी बुद्धि भुला देते हैं।

- **मधुकर हमहीं क्यौं समुझावत। ...**

व्याख्या

कृष्ण के विरह में डूबी गोपियों को उद्धव निर्गुण ब्रह्म और गीता का ज्ञान देने का प्रयास करते हैं। गोपियों को यह नहीं रुचता। उसी समय वहाँ उड़कर आए भँवरे को संबोधित करते हुए गोपियाँ उद्धव पर खीझते हुए कहती हैं कि तुम हमें क्यों समझा रहे हो? हम अबलाओं

के समक्ष बार-बार गीता का ज्ञान क्यों गा रहे हो? कृष्ण के बिना हमें तुम्हारी कपटपूर्ण कथा में कोई रुचि नहीं है। हमारे विरह की अग्नि को मिटाने के लिए कृष्ण रूपी चंदन की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त कोई और सत्य (ज्ञान) हमारे काम का नहीं है। आगे गोपियाँ एक साथ उद्धव और भँवरे दोनों को संबोधित करती हैं कि तुम तो चतुर कहलाते हो तो अपने मन में विचार कर बताओ कि सब फूलों पर घूम-घूम कर, उन्हें निरस कर कमल से क्यों बँध जाते हो? उसी प्रकार हमारे मन में भी वही (कृष्ण) बसते हैं जिनका चरण कमल के समान है; जिनके हाथ, आँख, बदन कमल के समान सुंदर हैं। सूरदास गोपियों की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हमारा मन भी भौंरे के समान अनुरागी है वह कृष्ण के बिना कैसे सुख पाएगा?

- **अखियाँ हरि दरसन की प्यासी। ...**

व्याख्या

गोपियाँ कहती हैं कि हमारी आँखे हरि दर्शन की प्यासी हैं। यह कमल के समान नेत्र वाले अर्थात कृष्ण को देखना चाहती हैं तथा उन्हें न देख पाने के कारण दिन-रात उदास रहती हैं। केसर का तिलक लगाए, मोतियों की माला पहले कृष्ण हमारे मन रूपी आँगन में आए थे और फिर चले गए मानो हम वृंदावन-वासियों के गले में फाँसी डाल गए। कोई किसी के मन की बात नहीं जानता, लोग हँसी उड़ाते हैं। सूरदास कहते हैं कि हे प्रभु, आपके दर्शन के लिए अपनी जान भी दे दूँगा।

- **उधौ तुम हौ चतुर सुजान। ...**

व्याख्या

उधो तुम चतुर और ज्ञानी हो। हमें तो वह सीख दो यानी वह उपाय बताओ जिससे कि नंद के पुत्र (कृष्ण) को वापस लाना संभव हो। तुम बताओ जिनका भोजन माँस है वह साग की इज्जत क्यों करेगा? जो मुख पान खाता है उसके आगे सेम का पत्ता परोसने का क्या प्रयोजन है? जिसने मुरली की तान सुनी है वह सारंगी के स्वर को कैसे सच मान लेगा? गोपियाँ कहती हैं कि ब्रज में सुख तो उसी दिन होगा जिस दिन कान्हा यहाँ आएँगे।

- **उधौ कहा कहत बिपरीत। ...**

व्याख्या

हे उधो! उल्टी बात क्यों करते हो? तुम युवतियों को योग की शिक्षा दे रहे हो यह तो रीति के अनुकूल नहीं है। तुम्हारा यह कार्य वैसे ही नीति विरुद्ध है जैसे कोई गाय को हल में जोते और बैल से दूध दुहने का प्रयास करे। चकवा-चकवी को चंद्रमा से क्या मतलब है। (ऐसा माना जाता है कि चकवा-चकवी रात में बिछुड़ जाते हैं।) चकोर को सूर्य से प्रेम कहाँ होता है। अगर पत्थर तैरने लगे और लकड़ी डूब जाए तो हम तुम्हारी नीति को मान लेंगे। सूरदास कहते हैं कि श्याम के हर अंग के सौंदर्य पर गोपियाँ न्योछावर है

5.9 सारांश

- सूरदास से संबंधित 25 काव्य-कृतियों की चर्चा आलोचकों द्वारा की जाती है, किंतु 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य-लहरी' को ही अधिकांश आलोचक सूरदास

की रचना मानते हैं। इनमें भी 'सूरसागर' की प्रामाणिकता निर्विवाद है जबकि 'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी' की प्रामाणिकता को लेकर आलोचकों में मतभेद है।

- सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है, जो वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत दर्शन पर आधारित है। पुष्टिमार्गीय भक्ति का बीज तत्व 'भगवतानुग्रह' है, जिसमें पूरी भक्ति प्रभु के अनुग्रह पर आश्रित है। ईश्वर-प्राप्ति का कृपा-मार्ग ही पुष्टिमार्ग है।
- सूरदास की भक्ति में जहाँ एक ओर विनय के पद हैं तो दूसरी ओर कृष्णलीला के। कृष्णलीला-वर्णन का पहला चरण वात्सल्य-वर्णन है। कृष्ण की वृंदावन लीला में सूर की सख्य भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं। सूरदास की भक्ति का अगला और अंतिम चरण माधुर्य भाव की भक्ति का है। माधुर्य में प्रेम और शृंगार-भाव का समावेश रहता है। गोपियों और कृष्ण तथा राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगो में माधुर्य भक्ति की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।
- पुष्टिमार्गीय भक्ति में श्रीकृष्ण के बाल रूप और बाललीलाओं की अधिक महत्ता रही है। वात्सल्य वर्णन में सूरदास विश्व के श्रेष्ठतम कवि माने जाते हैं। वे जितना बाल मनोविज्ञान में पारंगत हैं, उतना ही एक माँ के हृदय की विभिन्न अंतर्दशाओं के मर्मज्ञ।
- सूरदास के काव्य में प्रेमाभक्ति या माधुर्य भक्ति की प्रधानता है। इसके अंतर्गत सूरदास का मुख्य वर्ण्य विषय राधा-कृष्ण तथा गोपी-कृष्ण के प्रेम-प्रसंग हैं जो पूरी तरह शृंगार भावना पर ही आधारित हैं।
- यहाँ शृंगार के दोनों पक्ष– संयोग और वियोग, काव्यशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक– दोनों ही दृष्टियों से सशक्त हैं। सूरदास के काव्य में प्रेम-शृंगार की अभिव्यक्ति भक्ति

भावना का ही परिपुष्ट रूप है, जहाँ सभी भाव आकर भक्ति के सागर में समाहित हो जाते हैं।

- सूरदास के काव्य में ब्रज का लोक जीवन विस्तृत और वैविध्यपूर्ण रूप में विद्यमान है। कवि द्वारा वर्णित कृष्णलीला की पृष्ठभूमि ब्रज के ग्रामीण अंचल की है, इसलिए सूरकाव्य में वहाँ की लोकमान्यताएँ, लोकभाषा और लोक संस्कृति इस काव्य की आंतरिक पहचान बनकर उभरी हैं। सूरदास का काव्य पूर्णतः लोक जीवन से उपजा काव्य है।
- भक्त कवि सूरदास के काव्य में संवेदना पक्ष और शिल्प पक्ष के सौंदर्य का एक अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है। सूरदास को मानव-मन के सूक्ष्म भावों की न केवल गहरी परख थी, अपितु उन भावों को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करने में भी महारत हासिल थी। वात्सल्य और शृंगार के जिस धरातल पर सूर ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई वह दूसरों के लिए दुर्गम और दुर्लभ ही रहा। ब्रजभाषा के लोकप्रचलित रूप को सृजन की भाषा बनाकर सूर ने एक नई परंपरा की शुरूआत की।

5.10 शब्दावली

दृष्टकूट – सूरदास रचित वे पद जिसमें अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अर्थ अथवा भाव को प्रतीकात्मक रूप से व्यक्त किया जाता है।

पुष्टिमार्ग – पुष्टिमार्ग में पुष्टि का अर्थ पोषण यानी भगवान की कृपा से है। इस मार्ग का मुख्य लक्ष्य ईश्वर की कृपा प्राप्ति है।

अष्टछाप – वल्लभाचार्य के चार शिष्य तथा विट्ठलनाथ के चार शिष्यों से बना आठ कृष्णभक्तों का समूह।

शुद्धाद्वैत – शुद्धाद्वैत में ब्रह्म को माया के संबंध से रहित माना गया है। जीव और जगत भी ब्रह्म के ही रूप हैं।

विप्रलंभ शृंगार – वियोग की दशा में प्रेम का होना।

भ्रमरगीत – सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों के काव्य में भौंरे को संबोधित करते हुए गोपियों द्वारा की गई अभिव्यक्तियाँ।

नवधा भक्ति – ईश्वर की अराधना के नौ प्रकार बताए गए हैं। इन्हें ही नवधा भक्ति कहा जाता है। ये नौ प्रकार हैं– श्रवण, कीर्तन, अर्चण, स्मरण, पादसेवन, दास्य, वंदन, सख्य और निवेदन।

5.11 उपयोगी पुस्तकें

- *हिंदी साहित्य का इतिहास* – रामचंद्र शुक्ल; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
- *हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास* – हजारीप्रसाद द्विवेदी; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
- *भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य* – मैनेजर पांडेय; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- *सूरदास* – रामचंद्र शुक्ल; प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- *भक्तिकाव्य का समाज दर्शन* – प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (क) नाभादास

   (ख) सूरदास

   (ग) मियां सिंह

   (घ) ध्रुवदास

   (ङ) डॉ. दीनदयालु गुप्त

2. (क) परिवेश और समाज

   (ख) वल्लभाचार्य

   (ग) गऊघाट

   (घ) दैन्यभाव

3. देखिए– भाग 5.2

4. देखिए– भाग 5.2

5. (क) – ✓

   (ख) – ×

   (ग) – ✓

   (घ) – ✓

   (ङ) – ×

6. देखिए – भाग 5.3

7. देखिए– भाग 5.4

8. देखिए– भाग 5.5

9. देखिए– भाग 5.6

10. देखिए– भाग 5.7

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY